साधुमार्ग और उसकी परम्परा

मुनिज्ञान

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैनसंघ

समता भवन

रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज.)

● पुस्तक
साधुमार्ग और उसकी परम्परा

● मुनिज्ञान

● प्रकाशक
अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग
बीकानेर (राज)

● संस्करण
प्रथम
अक्टूबर, १९८५

● मुद्रक
श्री जैन आर्ट प्रेस,
रामपुरिया मार्ग, बीकानेर।

● मूल्य—तीन रुपया मात्र

प्रकाशकीय

साधुमार्गी की इस पवित्र-पावन धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए बडे-२ आचार्यों ने अपना-अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भगवान महावीर के बाद अनेक बार आगमिक धरातल पर क्रान्ति का प्रसग आया है। जिस क्रान्ति के द्वारा श्रमण-सस्कृति अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयास किया जाता रहा। ऐसी क्रान्ति की धारा मे महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचन्द जी म. सा. का नाम विशेष रूप से उभर कर सामने आता है। तत्कालीन युग मे जहा शिथिलाचार व्यापक तौर पर फैलता जा रहा था। शुद्ध साधुत्व की स्थिति ही विरल परिलक्षित होती थी। बडे-बडे साधु भी मठो की तरह उपाश्रयो मे अपना स्थान जमाये हुए थे। चेलो के पीछे साधुता बिखरती जा रही थी। ऐसे युग मे आचार्य श्री हुक्मीचन्द जी म. सा ने उपदेशो से ही नही अपितु अपने विशुद्ध एव उत्कृष्ट सयम जीवन मे जनमानस को प्रभावित किया था। तप के साथ क्षमा एव उत्कृष्ट सयम के साथ उत्कृष्ट सम्यक्ज्ञान का सयोग दुर्लभ ही देखने को मिलता था। किन्तु आचार्य प्रवर मे ऐसे दुर्लभ सयोग सहज ही सुलभ थे। आपके जीवन का ही प्रभाव था कि हजारो स्त्री पुरुष आपके चरण सान्निध्य को पाने के लिए लालायित रहने लगे। तब "तिन्नाणं तारयाणं" के आदर्श आचार्य प्रवर ने योग्य मुमुक्षुओं को दीक्षित किया और जो देशव्रती बनना चाहते थे, उन्हें देशव्रती बनाया। इस प्रकार सहज रूप मे ही चतुर्विध सघ का प्रवर्तन हो गया। समुद्र मे जिस प्रकार दूर तक गंगा का पाट अलग-थलग दिखलाई देता है वैसे ही जैन-धर्म के समुद्र मे आचार्य प्रवर की यह धारा एकदम अलग-थलग सी परिलक्षित होने लगी। यहा से फिर साधुमार्ग मे एक क्रान्ति घटित हुई। जिस क्रान्ति की धारा को पश्चात्वर्ती आचार्यों ने निरन्तर आगे बढाया। आज हमे परम प्रसन्नता है कि समता विभूति, विद्वद् शिरोमणि, जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानेश मे वह क्रान्ति निरन्तर वृद्धिगत

है । एक साथ २५ दीक्षाओं ने सैकडो वर्षों के अतीत के इतिहास को प्रत्यक्ष कर दिखाया है । ऐसी एक नही अनेक क्रान्तियां आचार्य प्रवर के सान्निध्य मे घटित हो रही हैं । सयम पालन के साथ हर साधु–साध्वी वर्ग ने आचार्य प्रवर के सान्निध्य को पाकर सम्यक्–ज्ञान की दिशा मे भी आश्चर्यजनक विकास किया है ।

शान्तक्रान्ति के अग्रदूत स्वर्गीय आचार्यश्री गणेशीलाल जी म. सा. की स्मृति मे अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संघ ने श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार की स्थापना की । ज्ञान भण्डार में अनेकानेक प्रकाशित एव हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह हुआ है। हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थो का सचयन कर उन्हे श्री अ भा सा. जैन साहित्य समिति सर्व जन हितार्थ प्रकाशन कर रही है । इसी संकल्प की क्रियान्विति मे "अष्टाचार्य गौरवगगा" को भी श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार से प्राप्त किया है । इसका लेखन आचार्य प्रवर के अन्तेवासी सुशिष्य विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनि जी म. सा ने ऐतिहासिक तथ्यो को लक्ष्य मे रखते हुए अत्यन्त रोचक ढग से कर एक बहुत बडे अभाव की पूर्ति की है । संघ ने इसका प्रकाशन कार्य भी प्रारम्भ कर दिया था । ७२ पेज छप भी गये थे । किन्तु मेटर अधिक होने से लोगो के परामर्श से साइज को बदलना उचित समझा गया । इसलिए छप चुके ७२ पेजो को हम 'साधुमार्ग और उसकी परम्परा' के नाम से अलग से प्रकाशित कर रहे हैं । साथ ही अष्टाचार्य गुण सौरभ भी प्रकाशित कर रहे हैं । आशा है पाठक इनसे लाभान्वित होगे ।

दीपचन्द भूरा	गुमानमल चोरड़िया	धनराज बेताला
अध्यक्ष	संयोजक, साहित्य समिति	मन्त्री

एक दृष्टि

जिन शब्द से जैन शब्द बना है। जन पर दो मात्राएं राग-द्वेष की प्रतीक है। जिसने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर ली है ऐसे महापुरुषो पर श्रद्धा रखने वाले तथा राग-द्वेष पर विजय पाने के लिए प्रयत्नशील जैन कहे जाते हैं, उनका धर्म जैन धर्म कहा जाता है। जैन धर्म का प्राचीनतम नाम 'साधुमार्ग' ही रहा है। स्थानक-वासी, बाईस सम्प्रदाय ढुंढिया आदि नाम बाद के हैं। जैन धर्म का सबसे पहला नाम साधुमार्ग है। यह आगमिक धरातल के साथ ऐतिहासिक दृष्टि से भी सिद्ध है।

साधुमार्गी सघ की प्राचीनता क्या है ? और उसकी परम्परा कब से चली आ रही है ? इसका अति संक्षिप्त मे स्पष्टीकरण प्रस्तुत 'साधुमार्ग और उसकी परम्परा' मे किया गया है। यथार्थ मे तो 'साधुमार्ग और उसकी परम्परा' के स्वतन्त्र लेखन का कोई आयोजन नही था। यह तो 'अष्टाचार्य गौरवगगा' नामक ग्रन्थ की भूमिका के रूप मे आलेखन किया गया था। फिर भी संक्षिप्त मे सारभूत रूप से किया गया स्पष्टीकरण जिज्ञासुओं को दिशा निर्देश देने वाला बनेगा ऐसी आशा है 'माधुमार्ग और उसकी परम्परा' के साथ 'अष्टाचार्य गुण सौरभ' सस्कृत काव्य के साथ हिन्दी मे भी प्रस्तुत किया गया है। आशा है जिज्ञासु उसमे लाभान्वित होगे।

❀ मुनिज्ञान

★

मर्यादा ही उत्तम आचरण का सुरक्षा-कवच है। प्रभु महावीर का सन्देश है कि आचरण की धारा सम्यक् ज्ञान के चट्टानी तटबन्धों मे ही मर्यादित रहनी चाहिये।

आचार्य स्व. गुरुदेव श्री गणेशीलाल जी म. सा. ने श्रमण संस्कृति की सुस्थिति एव उन्नयन के लिए 'शान्त क्रान्ति' का अभियान चलाया। इस अभियान को ओजस् प्रदान करना साधुवर्ग का दायित्व है। इसके लिए साधुवर्ग को जहा साधना के पथ पर अविराम रूप से आरूढ़ रहना है वही अपनी साधनागत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति द्वारा सामान्यजन के लिए सुदृढ साधनासेतु का निर्माण भी करते चलना है। 'शान्त क्रान्ति' आत्मसाधना मे ही परात्म-साधना के उदय का अभियान है। जो आत्मपक्ष, परात्म पक्ष एव परमात्म पक्ष तीनो को उजागर करने मे सक्षम है। साधु एव साध्वी समाज ने विगत तीन वर्षों मे सम्यक् ज्ञानार्जन की दिशा मे अच्छी दूरी तय की है। रथ बढ रहा है, पथ भी प्रशस्त हो रहा है...... ....

★ आचार्य श्री नानेश

समर्पण

आचार्य परम्परा के महान् श्रुतधर

ध्रुव नैष्ठिक क्रान्ति के उद्गाता

आचार्य श्री नानेश

जिन्होंने, मुझे

पुनीत-पावनी धारा में

निमज्जित किया

उन्हीं के

करकमलों

में

—मुनिज्ञान

साधुमार्ग और उसकी परंपरा

दुग्ध के साथ धवलता कब से चली आ रही है ?
अग्नि के साथ उष्णता का सम्बन्ध कब से है ?

इन विषयो की प्रादुर्भूति के विषय मे कुछ भी नही कहा जा सकता । जब से दुग्ध है, तभी से उसकी धवलता है । जब से अग्नि है तभी से उसके साथ उष्णता का सम्बन्ध बना हुआ है ठीक इसी प्रकार जब से भू, तोय, अनल, अनिल आदि प्राणी समूह एव जड तत्त्व चले आ रहे हैं, तभी से धर्म एव सस्कृति भी चली आ रही है ।

पृथ्वी आदि मूलभूत तत्त्व, अनादि काल से चले आ रहे हैं और अनन्तकाल तक चलते रहेंगे । आविर्भाव-तिरोभाव हो सकता, सर्वथा प्रणाश नही । धर्म एव सस्कृति का स्वरूप भी यही है । धर्म भी अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा । धर्म का भी क्षेत्र-काल की दृष्टि से ह्रास-उत्थान हो सकता है, सर्वथा अभाव नही ।

इस दृष्टिकोण से धर्म की अनादिता को ऐतिहासिक तट-बधो से अनुबन्धित नहीं किया जा सकता । ऐतिहासिक दृष्टि, धर्म की अनादि शाश्वत सत्ता को स्पष्ट नही कर सकती । तथापि सामान्य जन-मानस, धर्म की प्राचीनता अर्वाचीनता के लिये ऐतिहासिक तथ्यों को, अधिक महत्त्व प्रदान करता है ।

इसी दृष्टि से साधुमार्ग के ऐतिहासिक तथ्यो पर कुछ बतला देना उपयोगी होगा ।

जैन दर्शन में प्रवहमानकाल की अनवरत परिक्रमा को उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल, षट् आरक के रूप में विभाजित किया है । प्रथम तीन काल खण्डो के व्यतीत होने पर भोगभूमिज व्यवस्था

के बाद कर्म भूमिज जीवन निर्वाह की प्रणाली के प्रारंभ होने पर तीर्थंकर महाप्रभु ऋषभदेव ने जनमानस का ध्यान, साधुमार्ग की परंपरा की ओर आकर्षित किया । अतः इस काल चक्र की अपेक्षा ऋषभदेव भगवान् साधुमार्ग की परंपरा के उद्गाता कहे जाते हैं । तदनन्तर उत्तरवर्ती प्रभु अजितनाथ से प्रभु महावीर तक के सभी तीर्थंकरों ने अपने-अपने शासनकाल में साधुमार्ग का प्रतिपादन किया ।

नमस्कार महामंत्र द्वारा यह, अच्छी तरह से स्पष्ट हो जाता है । नमस्कार महामंत्र समग्र जैन समाज को एक स्वर से मान्य है । इसे संपूर्ण आगमों का सार कहा जाता है । इससे भी प्रचलित जैन धर्म साधुमार्ग के रूप में ही फलित होता है ।

नमस्कार महामंत्र के पांच पद ये हैं—

१. णमो अरिहंताणं
२. णमो सिद्धाणं
३. णमो आयरियाणं
४. णमो उवज्झायाणं
५. णमो लोए सव्व साहूणं

इन पांच पदों में चार पद साधु के और एक पद सिद्ध भगवान् का है । पांचवां पद तो 'सव्व साहूणं' की दृष्टि से साधु का है ही, किन्तु अवशेष द्वितीय पद से अतिरिक्त तीन पद भी साधु की कोटि में ही आते हैं । साधु में ही जब उपाध्याय योग्य विशेषता आती है, तब उसे उपाध्याय बनाया जाता है और जिस साधु में आचार्य जितनी विशेषता आती है, उसे आचार्य बनाया जाता है, किन्तु जो साधु घनघाती कर्म को क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह अरिहंत पद में आ जाता है । उपाध्याय, आचार्य या अरिहंत पद आ जाने से साधु पद चला नहीं जाता किन्तु इन पदों के मूल में साधुत्व तो बना ही रहता है । इस बात का स्पष्टीकरण उत्तराध्ययन सूत्र के २० वें अध्ययन की पहली गाथा 'सिद्धाण न नमोकिच्चा संजयाण च भावओ' द्वारा भी किया गया है ।

नमस्कार मंत्र के पांच पदों को इस गाथा में सिद्ध और

संयति इन दो पदों में ही सम्मिलित कर लिया है। अत. इस दृष्टि से अरिहंत भी मूल में साधु–श्रमण होते हैं।

जिस प्रकार मनुष्य-मनुष्य एक होते हुए भी राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री आदि अलग-अलग पद पर होने पर उन्हे उन-उन पदो से संबोधित किया जाता है तथापि वे मूलतः तो मनुष्य ही होते है। इसी प्रकार मनुष्य की तरह सामान्य रूप से अरिहंतादि भी साधु ही हैं। किन्तु वे चार पदो की अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट साधु हैं और ये सर्वोत्कृष्ट साधु ही अपने विशिष्ट ज्ञान के बल पर मोक्ष–मार्ग प्रतिपादित करते हैं। उन विशिष्ट साधु द्वारा मोक्ष–मार्ग प्रतिपादित होने से यह स्वत. सिद्ध हो जाता है–साधु द्वारा निर्देशित मार्ग :— 'साधुमार्ग' ही होगा।

'साधोः आगत मार्ग' साधुमार्गः' साधु से जो मार्ग आया या साधु ने जो मार्ग बतलाया वह साधुमार्ग के रूप मे प्रचलित हुआ।

साधु के ही अपरनाम भिक्षु, निर्ग्रन्थ, श्रमण आदि होते हैं। इसीलिए आगमो मे भगवान् के प्रवचन एव स्वय भगवान् को श्रमण शब्द से संबोधित किया है यथा–"तएण सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स, अनिए धम्म सोच्चा, णिसम्म हट्ठ-तुट्ठे उट्ठाए–उट्ठेई, उट्ठित्ता जाव एवं वयासी–सद्दहामिण भते णिग्गथ पावयण।"

(सुखविपाक सूत्र)

उपर्युक्त पाठ मे भगवान् को श्रमण और उनके प्रवचन को निर्ग्रन्थ प्रवचन कहा है इस प्रकार के उल्लेख अन्य अनेक आगमो में स्थान-स्थान पर उपलब्ध भी होते हैं। आगम मे तथा व्यावहारिक भाषा में भी पहले श्रमण लगाते हैं जैसे कि–श्रमण भगवान् महावीर जिसकी पुष्टि शास्त्रकार स्वय करते हैं। शास्त्रो मे श्रावक को श्रमणोपासक कहा है, भगवदोपासक नही। अतः नमस्कार महामंत्र मे साधुमार्ग की अभिव्यक्ति निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाती है। तेरापथ सघ की साध्वी सघमित्राजी के द्वारा लिखित 'जैन धर्म के प्रभावक आचार्य' नामक पुस्तक में भी साधुमार्ग की प्राचीनता को स्पष्ट किया गया है।

जब सर्वाधिक प्राचीन साधुमार्ग ही रहा है तो यह जिज्ञासा

सहज परिस्फुटित होती है कि वर्तमान मे प्रचलित दिगम्बर, श्वेताम्बर, देरावासी, स्थानकवासी, तेरापंथ आदि का आविर्भाव कब और किस प्रकार हुआ ?

जिज्ञासा के विस्तृत समाधान के लिये तो 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' ग्रन्थ द्रष्टव्य है । संक्षिप्त रूप मे इसका समाधान इस प्रकार है—

प्रभु महावीर के जन्म राशि पर भस्मगृह एव पंचक काल के प्रभाव से इसमे उतार चढाव आना स्वाभाविक था । इसी प्रसंग का कल्पसूत्र मे स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि साधु-साध्वियों की उदय-उदय पूजा नहीं होगी ।

जप्पमिह चरा से खुद्दाए भासरासी महग्गहे दो वास सहस्सठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्त सकते तप्पमिइं चणसमणाण णिग्गथाण णिग्गथीण य नो उदिए-उदिए पूजा सक्कारपवत्तइ ।

(कल्प सूत्र)

प्रभु महावीर के निर्वाण होने के अनंतर ६०० वर्ष तक साधुमार्ग निराबाध गति से चलता रहा है । किन्तु वीर निर्वाण की सातवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे एकान्त मान्यता के कारण साधुमार्ग की परंपरा मे एक शाखा विलग हुई जो शरीर पर वस्त्र नही रखने के कारण जो 'दिगम्बर' शब्द मे प्रचलित हुई । दिगम्बर मत के प्रवर्तक शिवभूति अनगार थे । जो हठाग्रहवश वस्त्र छोडकर निकल पड़े । इनकी बहिन उत्तरा भी साधुमार्ग मे प्रव्रजित थी, वह भी भाई के मोहवश निर्वस्त्र ही निकल पडी । किन्तु स्त्री का निर्वस्त्र शरीर बीभत्स लगने के कारण गृहस्थो ने उसे जबरन कपड़े पहना दिये । बाद मे शिवभूति के कोडिण्य और कोट्टवीर दो शिष्य हुए और उनकी परंपरा चल पड़ी ।

दिगंबर मत के विलग होने का समय वीर निर्वाण के ६०९ वर्ष बाद का बतलाया गया है । जैसा कि जैन धर्म के प्रमायक आचार्य मे बतलाया गया है—'वीर निर्वाण की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अविभक्त जैन श्रमण संघ श्वेताम्बर और दिगम्बर इन दो विशाल

शाखाओं में विभक्त हो गया । श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार वीर निर्वाण ६०९ में दिगम्बर मत की स्थापना हुई ।

इस मत का नाम निर्वस्त्र होने के कारण, (दिशा ही है अम्बर-वस्त्र जिसका) दिगम्बर प्रचलित हुआ तो इधर साधुमार्ग की अविरल धारा में आगमानुकूल साधना करने वाले साधक जो कि श्वेत परिधान से युक्त थे । अत. यहा से साधुमार्ग ही श्वेताम्बर (श्वेत ही है वस्त्र जिसका) नाम से प्रचलित हुआ ।

यह श्वेताम्बर नाम इस समय साधुमार्ग का ही उपनाम था ।

वीर निर्वाण के सातवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे बारह वर्ष का भयकर दुष्काल पडा था, इस समय साधुमार्ग को बहुत क्षति हुई । अनेक श्रमण श्री भद्रबाहु स्वामी के साथ उत्तर भारत से दक्षिण भारत की ओर चले गये । किन्तु जो श्रमण अकालग्रस्त क्षेत्र को छोडकर नही गए, वही पर रह गए, वे साधक अपनी मर्यादाओ को अक्षुण्ण नही रख सके । जीवन-निर्वाह करने के लिये उन्होने अपनी मर्यादाओ मे तत्कालीन अनेक परिवर्तन कर डाले । जिसकी लम्बी चर्चा है । लेकिन इन परिवर्तनो के विस्तार ने आगे चलकर भगवान् के पगलिये एव मूर्ति का प्रसग भी उपस्थित हुआ ।

यह वही प्रसग था, जिसमे श्वेताम्बर साधुमार्ग दो विभागों मे विभक्त हो गया । जो मदिर में आस्था रखने वाले थे, वे मूर्तिपूजक के नाम से प्रचलित हुए । इसकी उद्भुति का समय वीर निर्वाण के ६९० वर्ष बतलाया जाता है । किन्तु वीर निर्वाण ८८२ मे इनका स्पष्ट रूप से विभीकरण हो गया था ।

जैसा कि 'जैन धर्म के प्रभावक आचार्य' मे लिखा है—

'श्वेताम्बर परम्परा का मुनि समुदाय-वीर निर्वाण ८८२ में दो भागों में स्पष्ट रूप से विभक्त हो गया था । एक पक्ष चैत्यवासी सम्प्रदाय के नाम से और दूसरा पक्ष सुविहितमार्गी के नाम से प्रसिद्ध हुआ । चैत्यवासी गुरु भाव से शिथिलाचार का समर्थन करने लगे थे । चैत्यवासी को देशवासी भी कहा जाने लगा । किन्तु जो साधु वीतराग की आज्ञा के अनुसार आचरण-प्ररूपण करते चले आ रहे

थे, उनको क्वचित् सुविहित मार्गी एवं स्थानकवासी के नाम से प्रसिद्धि हुई। इस प्रकार दक्षिण भारत मे स्थानकवासी या सुविहितमार्गी के नाम से साधुमार्ग का प्रवाह चलता रहा और इधर उत्तर भारत में यति समाज का प्राबल्य बना रहा।

कालान्तर में शिथिलाचारिता के बीच लोकाशाह ने क्रान्ति की आवाज उठाई। किसी घटना विशेष के होने पर लोकाशाह ने आगमों का गंभीर अध्ययन किया। जिससे आपके अन्तर्चक्षु खुल गए। आपने धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझा और उसका खुलकर प्रचार–प्रसार करना प्रारम्भ कर दिया। 'पढ़े सूत्र तो मरे पूत्र' की तत्कालीन भ्रान्त मान्यता को आपने शास्त्रीय उद्धरण से खंडित कर सत्य के आलोक से जन–मन को आलोकित करना प्रारंभ कर दिया। यही वह समय था जब वीर प्रभु की जन्मराशि पर लगे भस्मग्रह की परिसमाप्ति हो चुकी थी।

इस प्रकार उत्तर भारत मे पुनः लोकाशाह ने क्रान्ति का शंखनाद फूंका, जिससे साधुमार्ग का त्वरित गति से प्रचार प्रसार होने लगा। जिससे संप्रेरित होकर अनेक अध्यात्माओं ने भागवती दीक्षा अंगीकार की, जो कि (२२) बाईस सिंगाड़ों में विभक्त होकर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधुमार्ग का प्रचार प्रसार करने लगे।

दूरस्थ क्षेत्रों मे विचरण होने से तथा एक–दूसरे के साथ विशेष संपर्क स्थापित नहीं हो पाने के कारण, अलग-अलग दीक्षाएं होते रहने से, अलग-अलग बाईस समूह का विस्तारीकरण हो जाने से ये ही बाईस सिंघाटक, बाईस संप्रदाय या बाईस टोले के रूप में प्रचलित हुए।

तत्कालीन पूज्य श्री धर्मदासजी म. सा. की संप्रदाय बाईस विभागों से विभक्त होने से २२ सम्प्रदाय या टोला नाम प्रचलित हुआ, ऐसा भी उल्लेख मिलता है।

यति समाज की ओर से उन्हें कई उपसर्ग भी दिये गये। ठहरने के लिये मकान उपलब्ध नहीं होने पर कोई साधु सिंगाड़ा एक टूटे–फूटे खंडहर मकान में ठहर गया। जिसे तत्कालीन भाषा में ढूंढा

भी कहा जाता था । इस ढूंढे मे ठहर जाने से साधुमार्गी संतों को 'ढु ढिया' के नाम से भी पुकारा जाने लगा ।

अत स्थानकवासी, बावीस संप्रदाय, बावीस टोला और ढू ढिया साधुमार्ग के ही अपर नाम हैं ।

लोकाशाह ने कोई नया धर्म नही चलाया था, अपितु साधुमार्ग को विकसित करने मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । इस प्रकार अनेक सकटो को सहन करता हुआ, उपनामों से प्रसिद्धि को प्राप्त करता हुआ 'साधुमार्ग' आज भी अनवरत प्रवाहित हो रहा है ।

वीर निर्वाण सवत् २२८० के आस-पास आचार्य श्री रुघनाथ जी म सा. के शिष्य कठालिया ग्राम के श्री भीखणजी स्वामी ने दयादान के मूलभूत सिद्धान्त की उत्थापक मनकल्पित प्ररूपणा करना प्रारभ कर दिया । बहुत कुछ समझाने पर भी जब वे नही माने तो आचार्य श्री रुघनाथजी म. सा. ने भीखणजी स्वामी को अपने सघ से बहिष्कृत कर दिया । गुरु से बहिष्कृत होकर इन्होने नये पथ की स्थापना की, जो कि 'तेरह पथ' के नाम से समाज के समक्ष आया ।

इस प्रकार 'साधुमार्ग' अनेक संप्रदाय, पथ, मत मे विभक्त होता हुआ भी मूलभूत रूप मे साधुमार्ग आज भी अपने अक्षुण्ण अस्तित्व के साथ निरन्तर गतिमान है । जिस साधुमार्ग मे अभिनव क्रान्तिया घटित हुई हैं और आज भी घटित होती जा रही हैं वर्तमान मे साधुमार्गी सघ के एकमात्र अनुशास्ता आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य में एक साथ सपन्न २५ दीक्षाओ ने सैकडों वर्षों के अतीत इतिहास को प्रत्यक्ष कर दिखाया है । जिनके कुशल नेतृत्व को पाकर साधुमार्ग निरन्तर श्रेयस् की ओर गतिशील है । इसीलिये प्रभु ने पूर्व मे फरमा दिया था कि मेरा शासन २१ हजार वर्ष पर्यन्त चलता रहेगा ।

"जम्बू दीवेणं भते" दीवे भारहवासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुप्पियाणं केवत्तियं कालं तित्थे अणु सिज्जस्सइ ?

गोयमा-जम्बूदीवे भारहवासे इमीसे ओसप्पिणीए मम एगवीसं वास-सहस्साइं तित्थे अणुसिज्जस्सई (भगवती सूत्र श २० उ, ८)

महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से तो साधुमार्ग अनादि काल से अनवरत रूप मे गतिशील है और अनन्तकाल तक अक्षुण्ण रूप तक चलता रहेगा । किन्तु 'भगवती सूत्र' के उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे भी २१ हजार वर्ष तक साधुमार्ग अनवरत गतिशील रहेगा ।

प्रभु महावीर के पश्चात् इस साधुमार्ग की धारा को अनवरत रूप मे प्रवाहित करने वाले धर्म-धुरधर, अनेको महान् आचार्य हुए हैं सक्षिप्त निदर्शन करना उपयोगी होगा ।

भगवान् महावीर के बाद अब तक के आचार्य भगवतों की गुर्वावली इस प्रकार हैं —

भगवान् महावीर के निर्वाण होने के बाद श्री गौतम स्वामी और श्री सुधर्मा स्वामी दो गणधर ही अवशेष रहे थे । शेष नव गणधर प्रभु के पहिले ही मोक्ष पधार चुके थे । जिस रात्रि को भगवान् महावीर मोक्ष पधारे, उसी रात्रि को गौतम स्वामी ने घनघातिक कर्म क्षपित कर केवल ज्ञान–दर्शन प्राप्त किया था । केवली आचार्य पद पर नही आते । अत श्री सुधर्मा स्वामी भगवान् महावीर के पाट पर विराजे ।

(१) सुधर्मा स्वामी :

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए सुधर्मा स्वामी राजगृह नगर मे पधारे तब ऋषभदत्त नाम का सुश्रावक अपने पुत्र जम्बूकुमार के साथ सुधर्मा स्वामी की सेवा मे उपस्थित हुआ । उपदेश सुनते ही जम्बूकुमार की सुषुप्त आत्मा जागृत हो उठी और वह आकर माता-पिता से दीक्षा स्वीकार करने की आज्ञा मागने लगा । अति आग्रह करने पर माता–पिता ने उसे समझाया कि जिन आठ कन्याओं के साथ तुम्हारा सबध निश्चित हुआ, उनसे विवाह करने के बाद ही दीक्षा ले सकते हो । जम्बूकुमार को यह बात माननी पड़ी । कुमार का आठों कन्याओ के साथ विवाह हो गया । उन आठ पत्नियो के समक्ष प्रथम रात्रि के दिन ही कुमार ने स्वय दीक्षा लेने का अभिप्राय रखा । पति और पत्निया के बीच विविध प्रकार का वार्तालाप होने

लगा। इसी समय एक प्रभव नामक राजपुत्र, जो राजगद्दी नही मिलने के कारण लूट–खसोट करता था। वह अपने पाच सौ चोरो के साथ इनके घर आ गया। लेकिन जम्बूकुमार के वैराग्यपूरित वचनों से इन सभी को वैराग्य हो आया। इधर कुमार की पत्नियां तथा माता–पिता भी दीक्षा के लिए तत्पर हो गये। इस प्रकार जम्बूकुमार, उसकी आठ पत्निया, माता-पिता, प्रभवकुमार तथा उसके पांच सौ साथी सभी एक ही दिन दीक्षित हो गए।

वर्तमानकाल मे आचारांगादि जो जिनागम हैं, वे भगवान् महावीर द्वारा वर्णित तथा सुधर्मा स्वामी द्वारा ग्रथित हैं।

(२) जम्बू स्वामी :

सुधर्मा स्वामी के पश्चात् जम्बू स्वामी पाट पर विराजित हुए। आपने अपनी दीक्षा व कैवल्य ज्ञान का ६४ वर्ष पर्यन्त पालन किया। ८० वर्ष की अवस्था मे मथुरा नगरी से मोक्ष पद प्राप्त हुए।

(३) आचार्य प्रभव स्वामी :

जम्बू स्वामी के बाद प्रभव स्वामी पाट पर विराजे। जिन्होंने अपने ज्ञानोपयोग से राजगृहवासी शय्यभव भट्ट को आचार्य पद के योग्य समझकर प्रतिबोधित किया।

(४) आचार्य शय्यंभव स्वामी :

शय्यंभव स्वामी चतुर्थ पाट पर विराजे। आपने जब दीक्षा ली थी उस समय आपकी पत्नी गर्भवती थी, उसके बाद में मनक नामक एक पुत्र हुआ। जिसने भी अपने पिता के पास दीक्षा ली। अपने श्रुतज्ञान द्वारा उसे अल्पायुष्क जानकर उसे अल्प समय में ही शास्त्रो का ज्ञान कराने के लिये दशवैकालिक सूत्र का प्रणयन किया। शय्यंभव स्वामी वीर निर्वाण ९८ में स्वर्गस्थ हुए।

(५) आचार्य यशोभद्र स्वामी :

आप तुंगीयायन गोत्रीय क्रियाकाण्डी ब्राह्मण तथा प्रकाण्ड

वेदाभ्यासी थे। तत्कालीन राजवंश एव उसके मन्त्री वश पर आपका अच्छा प्रभाव था। विदेह मगध अगादि देशों मे आपने अहिसा की धर्म-ध्वजा फहराई। आप २२ वर्ष तक गृहस्था अवस्था मे ६४ वर्ष तक सयमी जीवन मे और ५० वर्ष तक युगल प्रधान आचार्य पद पर रहे। कुल ८६ वर्ष की आयु पूर्ण कर वीर स १४८ में स्वर्गवासी हुए। आप शय्यंभव स्वामी के शिष्य थे। आपके प्रधान शिष्य महान् प्रभावक सभूति-विजय थे।

(६) आचार्य संभूति विजय :

आप माठर गोत्रीय ब्राह्मण थे। आपका शिष्य परिवार विशाल था। आप आचार्य यशोभद्र के पाट पर विराजे। जैनाकाश के उज्ज्वल नक्षत्र मुनि स्थूलिभद्र आपके ही शिष्य थे। अनेक शिष्यो में आपके १२ प्रमुख शिष्य थे। महामन्त्री सकडाल की सातो पुत्रियाँ, जो कि स्थूलिभद्र की बहिनें थी, वे भी आप ही के सान्निध्य मे दीक्षित हुई। आप ४२ वर्ष तक गृहवास, ४८ वर्ष तक साधु जीवन मे जिसके अन्तर्गत (आठ) ८ वर्ष युग प्रधान आचार्य पद पर सुशोभित हो, ९० वर्ष की अवस्था मे आयु पूर्ण कर वीर स १५६ मे स्वर्गवासी हुए।

(७) आचार्य भद्रबाहू :

आप प्राचीन गोत्रीय ब्राह्मण थे। दर्शन शास्त्र के उद्भट विद्वान, ज्योतिष शास्त्र मे पारगत चौदह पूर्वधारी ज्योतिर्विद आचार्य थे। आपके एक भाई वराह मित्र भी महान् ज्योतिषाचार्य थे। आप दोनों ने आचार्य यशोभद्र स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

श्रुत केवली परंपरा मे पचम श्रुत केवली थे। आपके बाद कोई १४ पूर्वधारी नही हुआ। कहते हैं आप ही ने 'उपसर्ग-हरस्तोत्र' की रचना की मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त आचार्य भद्रबाहु स्वामी के अनन्य भक्त थे।

आपश्री के जीवन का एक उल्लेखनीय प्रसग है—पाटलीपुत्र में जब आगमों की प्रथम वाचना पूर्ण हुई थी, तब स्थूलिभद्र की अध्यक्षता

में श्रमण सघ ने ११ अंगो का सकलन तो कर लिया पर बारहवें अंग का नही हो सका क्योंकि उसके ज्ञाता मात्र भद्रबाहु स्वामी ही थे। और वे नेपाल मे ध्यान महाप्राण की साधना में तल्लीन थे, तब आचार्य श्री को बुलाने हेतु दो मुनियो को नेपाल भेजा गया। मुनियो ने जाकर आचार्य श्री के समक्ष सघ के विचार रखे तब भद्रबाहु स्वामी ने फरमाया कि महाप्राण ध्यान की साधना मे व्यस्त होने के कारण मैं आ नही सकता। तब सघ की ओर से दो मुनि पुन. प्रेषित किये गये और उनके द्वारा आचार्य श्री को यह सदेश दिया गया कि सघ की आज्ञा न मानने पर क्या दण्ड होगा ?

आचार्य भद्रबाहु समझ गये और उन्होंने कहा कि सघ की अवज्ञा करने वाले को बहिष्कृत कर देना चाहिये। मैं स्वय भी उस दण्ड का भागी हूं।

तदनन्तर आपने विनम्रता से सन्देश कहलाया—संघ अगर योग्य मुनियो को अभ्यासार्थ यहा भेजने की व्यवस्था करे तो सघ की आज्ञा का पालन एव मेरी महाप्राण ध्यान साधना भी हो सकती है। यदि ऐसी व्यवस्था बन सके तो मैं महाप्राण ध्यान साधना को स्थगित कर भी उपस्थित हो सकता हूं।

सघ इस विनम्र उत्तर से आचार्य श्री के प्रति श्रद्धावनत हो गया और अध्ययन के लिये स्थूलिभद्र आदि ५०० साधुओं को नेपाल प्रेषित किया। किन्तु अन्य मुनि अध्ययन से उद्विग्न होकर लौट आये। केवल स्थूलिभद्र ने आठ वर्षों तक आठ पूर्वो का अध्ययन किया। इसी बीच इन्होंने भी आचार्य श्री से प्रश्न किया कि अब कितना अवशेष है तब आचार्य प्रवर ने फरमाया—'अभी तक तुम बूद जितना पढ पाए हो, अभी समुद्र जितना अवशिष्ट है।" यह सुन स्थूलिभद्र स्वामी और अधिक तन्मयता से साथ जुट गए तथापि आप दो वस्तु न्यून दसवें पूर्व तक ही अध्ययन कर पाए। अग्रिम चार पूर्वों का केवल मूल ही पढ पाए।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी का स्वर्गवास वीर सवत् १७० में कलिंग (उडीसा) कुमारगिरि पर हुआ। भद्रबाहु स्वामी ४५ वें वर्ष में दीक्षित हुए। ६२ वें वर्ष में युगप्रधान आचार्य पद प्राप्त किया। ७६ वर्ष की आयु पूर्ण कर स्वर्गगामी हुए।

(८) आचार्य स्थूलिभद्र :

आचार्य भद्रबाहु के पाट पर महान् प्रतापी काम विजेता आचार्य के रूप में आप प्रसिद्ध हुए। आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती आपके प्रधान शिष्य थे, वीर स. २१४ में होने वाले अव्यक्तवादी निह्नव भी आपही के समय मे हुए थे। आपने श्रावस्तिनगरी के धनदेव श्रेष्ठी को भी जैन धर्म मे दीक्षित किया था।

आचार्य स्थूलिभद्र के सम्बन्ध में एक उपदेश प्रधान कथा इस प्रकार पढने को मिलती है—

उन दिनों पाटलीपुत्र में कोशा नामक एक अत्यन्त ही रूपवती वैश्या रहती थी। स्थूलिभद्र उसी वैश्या के प्रेमपाश में बंधकर वहीं रहने लगे। इनके पिता शकडाल की मृत्यु होने पर राजा इनके छोटे भाई श्रियक को प्रधान मत्री का पद देने लगे। इस पर श्रियक ने राजा से कहा कि "मेरे अग्रज को ही यह पद दिया जावे, जो गत १२ वर्षों से वैश्या के यहां निवास कर रहे हैं, तब राजा की ओर से उन्हें आमन्त्रित किया गया। उन्होंने सोचा कि जिस राजा के निरर्थक क्रोध का परिणाम पिता की मृत्यु के रूप सामने आया, वही परिणाम भविष्य में फिर सम्मुख आ सकता है। इस विचार से उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। और साधुवेप धारण कर वे राज सभा मे उपस्थित हुए। वहां राजा के सामने इन्होंने अपने स्पष्ट विचार रखे तथा प्रधानमत्री पद अस्वीकार कर संभूति विजय आचार्य जी से दीक्षा ग्रहण कर ली और बडे ही भक्ति भाव से ज्ञान-अभ्यास करने लगे।

जब चातुर्मास निकट आया तब शिष्य वर्ग ने आचार्य जी से अपने-अपने चातुर्मास भिन्न-भिन्न स्थानों पर व्यतीत करने का निवेदन किया एक ने सिंह गुफा में चातुर्मास की आज्ञा मांगी तो दूसरे ने सर्प के बिल पर। तीसरे ने कुए के पाले (ढाणे) पर अपना चातुर्मास व्यतीत करने की आज्ञा चाही। किन्तु स्थूलिभद्र ने एक ऐसे स्थान का चयन किया जो जनसाधारण के लिए तो क्या बड़े-बडे तपस्वी और मुनियो तक के लिए सकट से कम नहीं हो सकता। वह स्थान था कोशा वैश्या का निवास स्थान। आचार्य जी ने चारों शिष्यो को

उनके द्वारा मांगे गये स्थानों पर चातुर्मास निर्गमन की स्वीकृति प्रदान कर दी ।

कोशा वैश्या के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा, जब साधु वेषधारी स्थूलि भद्र उसके यहां चातुर्मास के लिये पहुचे । उसने सोचा यह कोमलागो वाला साधु इतने घोर कठोर व्रतो का पालन करने मैं कभी समर्थ नहीं हो सकता, इसीलिए यह मेरे प्रेम पाश में पुन वधने हेतु यहा आया है । कोशा ने वडे आदर भाव से साधु स्थूलिभद्र का यथाविधि स्वागत-सत्कार किया । उसने उनसे विनम्र निवेदन किया-"मैं आपकी दासी हू । आपकी हर आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्राप्त आज्ञा का वरावर पालन करूगी ।"

निर्मोही निर्विकार साधु स्थूलिभद्र ने कहा—"मुझे तेरे निवास स्थान में चातुर्मास व्यतीत करना है ।" कोशा ने अपने निवास स्थान का एक भाग उन्हें सहर्ष सुपुर्द कर दिया । इसके पश्चात् वह साधु के सामने भिन्न भिन्न प्रकार के व्यञ्जन तैयार करके प्रस्तुत करती और अपनी विभिन्न शृ गारिक मुद्राओ के द्वारा स्थूलिभद्र के सामने अपने रुप लावण्य का प्रदर्शन करती । किन्तु वैराग्यधारी स्थूलिभद्रजी के ऊपर उसका कुछ भी असर नही होता । अन्त में कोशा भी उनकी भक्ति-भावना मे तल्लीन होकर उनके उपदेशामृत से स्वय भी व्रतधारी श्राविका वन गई ।

चातुर्मास पूर्ण कर स्थूलिभद्र जी एवं उनके तीनो अन्य साथी सिह गुफा, नाग बिल व कुए के द्वारों पर से आचार्य श्री के पास आये ।

आचार्य जी ने तीनों शिष्यों का स्वागत तो "धन्य है, धन्य है"—कहकर किया । किन्तु स्थूलिभद्र का विशेष-उन्होने "धन्य है, धन्य है, धन्य है"—कहकर किया । इस प्रसग से सिह गुफावासी शिष्य को इनसे ईर्ष्या हुई । उसने आचार्य जी से निवेदन किया कि वे उसे भी अगला चातुर्मास वैश्या के यहां व्यतीत करने की आज्ञा दें ।

आचार्य श्री सम्भूति विजयजी ने, जिन्हें १४ पूर्व का ज्ञान था, जान लिया कि सिह गुफावासी का चरित्र वैश्या के यहां जाने से

निर्मल नहीं रह सकेगा । इसलिए उन्होंने कुछ कहे मौन ही रखा । इधर उस सिंह गुफावासी शिष्य ने गुरु का मौन, स्वीकृति सूचक मान लिया अतः वह अपना अगला चातुर्मास व्यतीत करने इसी कोशा वेश्या के यहां पहुचा । वहा इस शिष्य का मन चंचल हो उठा । उसने वेश्या के रूप सौन्दर्य से अत्यधिक आकर्षित होकर अपना वैराग्यपन नष्ट करने तक का निश्चय कर लिया, किन्तु क्योंकि कोशा ने श्राविका-धर्म स्वीकार कर लिया था, अत उसने मुनि को अत्यन्त ही सावधानी पूर्वक भ्रष्ट होने से बचा लिया और उन्हें उनके आचार्य श्री के पास पहुंचा दिया ।

(९-१०) आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति :

दोनो ही आचार्य सर्वश्रेष्ठ मेधावी, बहुश्रुत संयमी थे । आप दोनो ने ११ अग एव दस पूर्वों का कठस्थ अध्ययन किया ।

आप के शासनकाल में भयकर दुष्काल पडा तथापि श्रावकगण अन्नादि से निस्पृह जैन साधको को भक्ति भावपूर्वक अशनादि से प्रतिलाभित करते । एकदा गोचरी लाते हुए एक मुनि के पीछे-पीछे चलता हुआ एक क्षुधा पीडित भिक्षुक, उपाश्रय मे आ गया । तब आर्य सुहस्ति ने समझाया कि हमारे आहार-पाणी का अधिकारी साधु के अतिरिक्त अन्य कोई नही हो सकता । क्षुधापीडित भिक्षुक ने तत्तकाल भागवती दीक्षा अगीकार कर ली । अत्यधिक आहार करने मे मारणातिक कष्ट होने लगा । श्रावको ने भक्तिभाव से उपचार करवाया, जिसे देखकर भिक्षुक के मन मे विचार आया कि अहो साधुवेष लेने मात्र ने मेरा इतना सम्मान हो रहा है तो वास्तविक जैन साधु का तो कहना ही क्या ?

भिक्षुक ने वेदना को समभाव के साथ सहन किया और वहा से चलकर पाटली पुत्र के राजा कुणाल के यहां पुत्र के रूप में आया ।

यहां पर भी आर्य सुहस्ति के समागम से उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया । परिणामस्वरूप बारह व्रत अंगीकार किये । गांव-गाव में जिन धर्म प्रचारित किया ।

इसी प्रकार एक बार जब आर्य सुहस्ति उज्जैन पधारे तो उनके मुख से उच्चरित स्वाध्याय मे नलिनी गुल्म विमान का वर्णन चल रहा था जिसे श्रवण करने से बत्तीस स्त्रियो के साथ देवोपम विषय सेवन करने वाले एवन्तकुमार को जाति स्मरण ज्ञान हो गया, और वह पुन. उसी नलिनी गुल्म विमान मे जाने के लिये सब कुछ छोडकर जैन साधु बन गया । अल्प समय में ही गुरु आज्ञा पाकर श्मशान में भयकर कष्टो को समभाव से सहते हुए ध्यान साधना मे तल्लीन हो गया । परिणाम स्वरूप एवन्तकुमार पुनः अपनी इच्छानुसार नलिनी गुल्म विमान मे पहुच गये ।

आर्य महागिरि व आर्य सुहस्ति वीर निर्वाण के २४५ व २६१ वर्ष के पश्चात् हुए ।

(११) आर्य बलिसिहजी (बलिस्सहजी) ·

वीर निर्वाण के २४१ वर्ष में आर्य महागिरि के स्वर्ग गमन के पश्चात् आर्य बलिसिह गणाचार्य नियुक्त हुए । उन्होने अपने गण का नाम उत्तर बलिस्सह रखा । यहा जिज्ञासा उठती है कि बहुल एव बलिसिह इन दोनो स्थविरो मे बहुल के ज्येष्ठ होने पर भी बलिसिह को गणाचार्य क्यो नियुक्त किया गया ?

ऐसा प्रतीत होता है आर्य बहुल ने आर्य बलिसिह से ज्येष्ठ होते हुए भी अपनी अल्पायु आदि के कारणो से स्वय आचार्य न बनकर आर्य बलिसिह को आचार्य बनाया । आर्य बलिसिह ने भी ज्येष्ठ का आदर करते हुए अपने गण का नाम 'उत्तर बलिस्सह' रखा । ऐसा सभव है ।

आर्य बलिसिहजी के शिष्य आर्य उमास्वामी और उनके शिष्य श्यामाचार्य थे । जिन्होने पूर्वो मे से प्रज्ञापना सूत्र को उद्धृत किया था ।

(१२) आर्य स्वाति .

आर्य बलिस्सह के पश्चात् आर्य स्वाति आचार्य पद पर

प्रतिष्ठित हुए । नंदो सूत्र में स्थविरावली के अनुसार आपश्री हारित्र गोत्रीय ब्राह्मण परिवार के थे, वीर निर्वाण ३३६ (३३२) में आप स्वर्गस्थ हुए ।

(१३) श्यामाचार्य (कालकाचार्य) :

नदी सूत्र स्थविरावली के अनुसार आर्य श्यामाचार्य आर्य स्वाति के पश्चात् आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए । आपने वीर निर्वाण सं ३०० में २० वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की । ३५ वर्ष तक श्रमण धर्म की पालना के पश्चात् आपका वाचनाचार्य और युगप्रधान पद प्रदान किया गया । वीर नि. ३७६ में ९६ वर्ष की आयु मे आप स्वर्गस्थ हुए ।

श्यामाचार्य द्रव्यानुयोग के अपने समय के प्रकांड विद्वान् थे । इन्हीं श्यामाचार्य को निगोद व्याख्याता प्रथम कालकाचार्य कहा गया है–इनके सम्बन्ध मे एक घटनाक्रम इस प्रकार मिलता है—

एक समय महाविदेह क्षेत्र मे सीमधर स्वामी निगोद की व्याख्या फरमा रहे थे । उसे सुनने के पश्चात् सौधर्मेन्द्र ने सीमधर प्रभु से प्रश्न किया—भगवन्, क्या भरत क्षेत्र मे भी इस प्रकार निगोदा का वर्णन करनेवाला कोई श्रुतधर आचार्य आज विद्यामान है ? उत्तर में भगवान् ने फरमाया—हा भरत क्षेत्र में आर्य श्यामाचार्य द्रव्यानुयोग के विशिष्ट ज्ञाता हैं । वे श्रुतवल से निगोद का भी यथार्थ रूप वता सकते हैं । सौधर्मेन्द्र को यह सुनकर तीव्र उत्कठा हुई और वह भरत क्षेत्र मे श्यामाचार्य को वन्दन करने पहुचा । उसने आचार्य श्री से निगोद का स्वरूप पूछा और उनके मुख से यथार्थ स्वरूप सुनकर सौधर्मेन्द्र वडा प्रसन्न हुआ । आचार्य को वन्दन करने के पश्चात् लौटते समय सौधर्मेन्द्र ने आर्य श्याम के शिष्यो को अपने आगमन से अवगत कराने के लिये चिन्ह स्वरूप उपाश्रय का द्वार दूसरी दिशा की ओर मोड दिया । यही श्यामाचार्य पन्नवणासूत्र के रचयिता भी है । यह सूत्र आज भी ३६ पदों अर्थात् प्रकरणों में विद्यमान है । जीवाजीवादि समस्त पदार्थों के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से इस शास्त्र को तत्वज्ञान का अनुपम भण्डार कहा जा सकता है । जैन दर्शन के गहन तत्वज्ञान को समझने में इस सूत्र का अध्ययन वडा सहायक माना गया है ।

(१४) आर्य : पांडिल्य

श्यामाचार्य के पश्चात् कौशिक गोत्रीय आर्य पांडिल्य वाचनाचार्य हुए। इनको स्कंदिलाचार्य भी कहा जाता है। आप जीत व्यवहार के प्रति अधिक जागरूक थे।

(१५) आर्य समुद्र :

ये बहुत ही अनासक्त विचार वाले थे। इनको भिक्षा में जैसा भी सरल-नीरस आहार मिलता, उसको बिना स्वाद के बावी में सर्प के प्रवेश की तरह प्रशान्त भाव से सेवन कर लिया करते थे। इस प्रकार स्वाद और लाभ के प्रति अनासक्त होने के कारण आचार्य देवर्द्धि ने "अक्खुभिय समुद्र गभीर' पद से आपकी स्तुति की है।

आर्य समुद्र सोलह वर्ष गृहस्थावस्था रहे और सत्ताईस वर्ष मुनि जीवन में रहे और उसके बाद ७ चउपन वर्ष तक आचार्य पद को सुशोभित करके सत्तानवे वर्ष की आयु में वीर नि स ५०८ में स्वर्गस्थ हुए।

(१६) आर्य मंगू :

आर्य समुद्र के शिष्य आर्य मगू थे। आर्य मगू वीर निर्वाण ४५४ में वाचनाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आप भक्तिपूर्वक सेवा करने वाले, कुशलता के साथ शिष्यों को अध्ययन कराने वाले तथा जिन शासन की विशिष्ट प्रभावना करने वाले के रूप में प्रख्यात थे।

(१७) आर्य नन्दिल :

आर्य मगू के पश्चात् वाचक परम्परा में आर्य नन्दिल वाचनाचार्य हुए। आपका जीवन तप प्रधान था एवं कठिन से कठिन स्थिति में भी प्रसन्न रहने वाले थे।

(१८) आर्य नागहस्ति :

आर्य नन्दिल के पश्चात् आर्य नागहस्ति वाचनाचार्य हुए।

आप कर्मप्रकृति के विशिष्ट ज्ञाता तथा जिज्ञासाओ का समुचित समाधान करने वाले थे ।

(१९) आर्य रेवती नक्षत्र .

आर्य नागहस्ति के पश्चात् आर्य रेवती नक्षत्र वाचनाचार्य हुए। युग प्रधान आचार्य रेवती मित्र और आर्य रेवती नक्षत्र एक ही आचार्य थे या अलग-अलग इसका स्पष्टीकरण प्राप्त नही होता ।

(२०) आर्य ब्रह्मदीपिक सिह ·

आचार्य रेवतो नक्षत्र के पश्चात् आर्य ब्रह्मद्वीपिकसिह वाचनाचार्य हुए, आपकी श्रमरण दीक्षा अचलपुर मे हुई थी । आचार्य देवर्द्धि ने नन्दी सूत्र की स्थविरावली मे "बमगदीवगसीहे" पद से आपको ब्रह्मद्वीपिकसिह एव कालिक श्रुत की व्याख्या करने मे अत्यन्त निपुण, धीर और उत्तम वाचक पद का प्राप्त करने वाला बताया है । आचार्य देवर्द्धि ने सिह नाम के अनेक मुनियो से आर्य सिह को भिन्न बताने के लिये इन्हे "ब्रह्मद्वीपकसिह" इस नाम से अभिहित किया है ।

इस नाम के साथ ब्रह्मद्वीप शब्द देखकर सहज ही ब्रह्मद्वीपिकी शाखा की स्मृति हो जाती है, जो आर्य सिह गिरि के शिष्य आर्य समित से प्रारभ हुई थी, और ऐसा अनुमान होना स्वाभाविक है कि आर्य सिह ब्रह्मद्वीपिका शाखा के मुनि होगे किन्तु जब आर्य रेवती नक्षत्र के साथ गुरु शिष्य सम्बन्ध और देवर्द्धिगणी द्वारा कथित वाचकपद पर ध्यान जाता है, तब यह अनुभव होता है कि ये आर्य सिह वाचक परम्परा के ही विशिष्ट आचार्य होने चाहिये । कल्पसूत्र स्थविरावली मे स्थविर आर्य धर्म के शिष्य आर्य सिह का नाम उपलब्ध होता है । यदि उन्हे ब्रह्मद्वीपिकी शाखा का आचार्य मानकर स्कन्दिलाचार्य का गुरु माना जाये तो समय का मेल बैठ सकता है । किन्तु नन्दीसूत्र की चूर्णी, वृत्ति आदि मे स्कन्दिल को वाचक आर्य सिह के शिष्य रूप मे किया है । सभव है ब्रह्मद्वीपिकसिह का वाचनाचार्य काल वीर निर्वाण की ८ वी शताब्दि का अन्तिम काल रहा हो ।

श्रमणसघ स्तोत्र के अनुसार युग प्रधानाचार्य सिह का काल इस प्रकार मान्य किया है ।

वीर निर्वाण स ७१० में जन्म १८ वर्ष पश्चात् वीर निर्वाण स. ७२८ में दीक्षा, २० वर्ष सामान्य साधु पर्याय और ७८ वर्ष युग प्रधानाकाल पूर्ण कर निर्वाण स ८२६ मे स्वर्गवास ।

वाचक आर्य सिंह को युग प्रधान सिंह से भिन्न मानने पर आर्य स्कन्दिल का कार्यकाल २६ वर्ष अधिक होता है, जबकि युग प्रधान आर्य सिंह को ही वाचक आर्य सिंह मानने पर आर्य स्कन्दिल का कार्यकाल वीर निर्वाण स ८१७ में आता है ।

(२१) आर्य स्कन्दिल ·

वाचक वंश परंपरा के महान् प्रभावक, आर्य स्कंदिल आचार्य हुए हैं । आपने अति विषमकाल मे भी श्रुत ज्ञान की रक्षा कर संघ की अनुपम सेवा की है —हिमवन्त स्थविरावली के अनुसार आर्य स्कंदिल का संक्षिप्त परिचय निम्न है—

मथुरा के ब्राह्मण मेघरथ और ब्राह्मणी रूप सेना के यहां आपका जन्म हुआ । गर्भकाल मे माता ने चन्द्र का स्वप्न देखता अतः पुत्र का नाम सोमरथ रखा गया । आपके माता-पिता प्रारम्भ से ही जैन धर्मावलम्बी थे ।

एक बार ब्रह्मद्वीपक आचार्य सिंह विहार कर क्रम से मथुरा पधारे । उनके धर्मोपदेश को सुनकर सोमरथ ने वैराग्य भाव से श्रमण दीक्षा ग्रहण की । गुरु ने दीक्षा के समय आपका नाम स्कन्दिल रखा । मुनि स्कन्दिल ने अपने गुरु आर्य ब्रह्मद्वीपक सिंह की सेवा में निरत रहते हुए एकादशांगी एवं पूर्वों का ज्ञान प्राप्त किया । आर्य सिंह ने स्कन्दिल को सुयोग्य एवं प्रतिभाशाली समझकर अपना उत्तराधिकारी घोषित किया । तदनुसार आर्य सिंह के स्वर्गगमन के पश्चात् आर्य स्कन्दिल को संघ द्वारा वाचनाचार्य पद पर नियुक्त किया गया ।

आपका कार्यकाल वीर निर्वाण ८२३ से ८४० के आसपास माना गया है किन्तु स्थविरावलीकार ने वी स १५३ आर्य स्कन्दिल का संघ द्वारा मथुरा में साधु-साध्वियों को एकत्रित करने का उल्लेख किया है ।

(२२) हिमवन्त क्षमाश्रमण ·

आर्य स्कन्दिल के पश्चात् आर्य हिमवन्त वाचनाचार्य हुए। आपका यश सुदूर तक विस्तृत था। अन्य विशिष्ट प्रतिभा सपक्षवादी मानमर्दक, परिषह सहिष्णु आदि अनेक विशिष्ट गुणो से युक्त थे।

(२३) आचार्य-नागार्जुन :

हिमवन्त क्षमाश्रमण के पश्चात् आर्य नागार्जुन वाचनाचार्य हुए। आपने पादप्ति सूरि के सान्निध्य में अनेकविध वस्पति-विज्ञान के साथ आकाशगामी उडान की विधि सीखी थी।

आचार्य नागार्जुन का जन्म वीर नि. सं ७९३ में एवं वी. नि. सं ८०७ मे दीक्षा हुई। १९ वर्ष मे साधु पर्याय का पालन करने बाद वी नि. सं ८२६ युग प्रधान पद और ७५ वर्ष तक आचार्य पद से जिन शासन की वृद्धि की। वीर नि स ९०४ मे १११ वर्ष की उम्र मे स्वर्गवास हुए।

(२४) आर्य भूत दिन्न :

आर्य नागार्जुन के पश्चात् आर्य भूत दिन्न वाचनाचार्य हुए। आप तत्कालीन भारतवर्षीय साधुओ मे प्रमुख माने जाते थे।

युग प्रधान यन्त्र के अनुसार इन्हें युगप्रधान माना जाय तो इनका कार्यकाल इस प्रकार है —

वीर नि. स. ८६४ मे जन्म, ८८२ मे दीक्षा, ९०४ मे युगप्रधान पद, ९८३ में स्वर्गवास तदनुसार १८ वर्ष गृहवास, २२ वर्ष सामान्य श्रामण्य पर्याय, ७९ वर्ष युगप्रधान पद, कुल मिलाकर ११९ वर्ष की आयु पूर्ण कर स्वर्गस्थ हुए।

(२५) आर्य लोहित्य :

आर्यभूत दिन्न के पश्चात् वाचनाचार्य आर्य लोहित्य हुए।

आप सूत्रार्थ के सम्यक् धारक तथा पदार्थों के नित्यानित्य स्वरूप की व्याख्या करने में अति कुशल थे ।

(२६) आर्य दूष्य गणि :

आर्य लोहित्य के पश्चात् आर्य दूष्य गणि वाचनाचार्य हुए । आप तत्कालीन युग के विशिष्ट वाचनाचार्य थे । आपके पास अन्य अनेक गच्छों के ज्ञानार्थी श्रमण, श्रुतज्ञान के अध्ययन हेतु आया करते थे । अत. आप श्रुतार्थ की खान, प्रकृति से मधुर भाषी, तप-नियम सत्य सयम प्रधान आदि विशिष्ट गुणो से सम्पन्न थे ।

(२७) आर्य देवर्द्धि क्षमा श्रमण-(वाचनाचार्य-गणाचार्य) :

आचार्यों की इस परपरा देवर्द्धि क्षमा श्रमण का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है । क्योंकि आज से १५२० वर्ष पूर्व वल्लभी नगरी मे आप ही ने एक श्रमण सघ का सम्मेलन कर आगमवाचना द्वारा द्वादशाङ्गी के विस्तृत पाठो को सुव्यवस्थित सकलित किया । भविष्य में बिना हानि के आगम यथावत् बने रहे इसके लिये आगमो को पुस्तको के रूप मे लिपिबद्ध करवाकर अपूर्व दूरदर्शिता का परिचय दिया । परिणाम स्वरूप आगमो का यह अविरल प्रवाह पचम आरे के अन्त तक चलता रहेगा । आपका जीवन घटनाक्रम इस प्रकार बतलाया जाता है—

आपका जन्म सौराष्ट्र प्रान्त में वेरावल पाटण मे शासक अरिमर्दन के सामान्य अधिकारी काश्यप गोत्रीय कामर्द्धि क्षत्रिय की पत्नी कलावती की कुक्षि से हुआ । आप हरिनैगमेषी देव के रूप से च्यवकर मनुष्य जीवन मे आए थे । आपकी माता ऋद्धिशाली देव का स्वप्न देखा, अत आपका देवर्द्धि नाम रख दिया । बड़े होने पर आप कुसगति के कारण आखेट शिकार आदि व्यसनो मे पड गए । यह देखकर नवोत्पन्न देव हरिनैगमेषी ने आपको प्रतिबोधित किया । तब आपने आर्य लोहित्य के पास श्रामण्य दीक्षा अगीकार की थी ।

आपको पहले गणाचार्य के पद पर तथा दूष्यगणि के स्वर्गवास अनंतर वाचनाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया ।

इस प्रकार सत्ताइस पाट परपरा के आचार्यों का—अनेक ग्रन्थो के आधार से संक्षिप्त जीवन यहा प्रस्तुत किया गया ।

आर्य बलिसिंह के पश्चात् देवर्द्धिगणि, क्षमाश्रमण तक के पूर्वाचार्यों की दो परपराए प्राप्त होती है । नदी सूत्र की परपरा के अनुसार जिन आचार्यों का वर्णन प्राप्त है, ग्रहण किया गया है । जानकारी हेतु अन्य परपरा का भी नामोल्लेख किया जा रहा है ।

आर्य सुधर्मा से लेकर आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण तक की आचार्य परम्परा आगम युग का प्रतिनिधित्व करती है । पट्टावलियो के अनुसार यह आचार्यों की परम्परा कई रूपो मे उपलब्ध है । विभिन्न पट्टावलियो मे से कुछ पट्टावलियां नीचे दी जा रही है.—

देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण की गुरु परम्परा

१. आचार्य सुधर्मा	२ आचार्य जम्बू
३. आचार्य प्रभव	४ आचार्य शयभव
५. आचार्य यशोभद्र	६ आचार्य संभूतिविजय भद्रबाहु
७ स्थूल भद्र	८. आचार्य महागिरि सुहस्ती
९. आचार्य सुस्थित-सुप्रतिबद्ध	१० आचार्य इन्द्र दिन्न
११ आचार्य दिन्न	१२ आचार्य सिहगिरि
१३ आचार्य वज्र	१४ आचार्य रथ
१५. आचार्य पुष्टगिरि	१६. आचार्य फाल्गुनमित्र
१७ आचार्य धनगिरि	१८ आचार्य शिवभूति
१९ आचार्य भद्र	२०. आचार्य नक्षत्र
२१ आचार्य रक्ष	२२ आचार्य नाग
२३. आचार्य जेहिल (जेष्ठिल)	२४ आचार्य विष्णु
२५ आचार्य कालक	२६ आचार्य सपलित तथा भद्र
२७. आचार्य वृद्ध	२८ आचार्य सघपालित
२९. आचार्य हस्ती	३०. आचार्य धर्म
३१. आचार्य सिंह	३२. आचार्य धर्म
३३. आचार्य शाण्डिल्य	३४ आचार्य देवर्द्धिगणी

माथुरी वाचनानुसार स्थविर क्रम

१. आचार्य सुधर्मा
२ आचार्य जम्बू
३. आचार्य प्रभव
४. आचार्य शयभव
५. आचार्य यसोभद्र
६ आचार्य सभूति विजय
७. आचार्य भद्रबाहु
८ आचार्य स्थूल भद्र
९ महागिरि
१०. आचार्य सुहस्ती
११. आचार्य बलिस्सह
१२ आचार्य स्वाति
१३ आचार्य श्यामार्य
१४ आचार्य शांडिल्य
१५ आचार्य समुद्र
१६ आचार्य मगू
१७ आचार्य नदिल
१८. आचार्य नागहस्ती
१९. आचार्य रेवतिनक्षत्र
२० आचार्य ब्रह्मद्वीपिका सिंह
२१ आचार्य स्कन्दिलाचार्य
२२. आचाय हिमवन्त
२३ आचार्य नागार्जुन वाचक
२४. आचार्य भूतादिन्न
२५ आचार्य लोहित्य
२६ आचार्य दुष्यगणी
२७ देवर्द्धिगणी

वल्लभी वाचनानुसार स्थविर क्रम

१. आचार्य सुधर्मा
२. आचार्य जम्बू
३. आचार्य प्रभव
४. आचार्य शयभव
५. आचार्य यशोभद्र
६. आचार्य सभूति विजय
७ आचार्य भद्रबाहु
८ आचार्य स्थूल भद्र
९. आचार्य महागिरि
१० आचार्य सुहस्ती
११. आचार्य कालकाचार्य
१२. आचार्य रेवतीमित्र
१३. आचार्य समुद्र
१४. आचार्य मगु
१५ आचार्य धर्म
१६ आचार्य भद्रगुप्त
१७ आचार्य श्रीगुप्त
१८ आचार्य वज्र
१९. आचार्य रक्षित
२० आचार्य पुष्यमित्र
२१. आचार्य वज्रसेन
२२ आचार्य नागहस्ती
२३ आचार्य रेवती मित्र
२४. आचार्य ब्रह्मद्वीपिका सिंहसूरि
२५. आचार्य नागार्जुन
२६ आचार्य भूतदिन्न
२७ आचार्य कालकाचार्य

नन्दी सूत्र मे उल्लिखित स्थविरावली

१. आर्य सुधर्मास्वामी
२. आर्य जम्बू स्वामी
३ आर्य प्रभव स्वामी
४ आर्य शयभव स्वामी
५ आर्य यशोभद्र स्वामी
६ आर्य सभूति विजय
७ आर्य भद्रबाहुस्वामी
८ आर्य स्थूल भद्र स्वामी
९. आर्य महागिरि
१० आर्य सुहस्ती
११. आर्य बलिस्सह
१२ आर्य स्वाति स्वामी
१३ आर्य श्यामाचार्य
१४. आर्य शाण्डिल्य स्वामी
१५. समुद्र स्वामी
१६ आर्य मूग स्वामी
१७. आर्य धर्म स्वामी
१८ आर्य भद्रगुप्त स्वामी
१९. आर्य वज्र स्वामी
२०. आर्य रक्षित
२१. आर्य नन्दिल
२२ आर्य नागहस्ती
२३. आर्य रेवतिनक्षत्र
२४ आर्य सिह
२५ आर्य स्कन्दिल
२६ आर्य हिमवन्त
२७. आर्य नागार्जुन
२८ आर्य नागार्जुन वाचक
२९ आर्य गोविन्द स्वामी
३० आर्य भूत दिन्न स्वामी
३१ आर्य लाहित्य
३२. आर्य दुष्यगणी
३३ आर्य देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण

इनमे से पहली पट्टावली देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण गुरु शिष्य क्रम की परम्परा मानी गई है जिससे वहा "गुरु-परम्परा" विशेषण दिया है । शेष पट्टावलिया प्राय. युग प्रधानाचार्यो और वाचनाचार्यो का सकेत करती हैं ।

इन पट्टावलियो मे आर्य सुहस्ती के नाम तक तो कोई विशेष अन्तर नही है । और पश्चात्वर्ती नामो मे अन्तर दिखने का कारण यह है कि श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् समय-समय पर पडने वाले दुर्भिक्षो मे उत्तर-भारत मे विचरण करने वाले श्रमण सघ को दक्षिण की ओर बढना पडा । परन्तु उस स्थिति मे जो वृद्ध अथवा शारीरिक दृष्टि से चलने मे असमर्थ श्रमण थे वे उत्तर भारत मे विचरते रहे । जिससे श्रमण सघ दो भागो मे विभक्त हो गया । प्रथम दुष्काल की समाप्ति के बाद पुन. सम्मिलित भी हुए किन्तु

सम्प्रति मौर्य और आर्य वज्र के समय पडने वाले दुर्भिक्षो के कारण जो श्रमण सघ दक्षिण, मध्य और पश्चिम भारत मे आ गया था वह दीर्घ काल तक उत्तर भारत मे विचरने वाले श्रमण सघ से मिल नहीं सका। जिसके कारण उत्तर, दक्षिण और पश्चिम भारत मे विचरण करने वाले श्रमण सघ के अलग अलग स्थविर हो गये। दक्षिणवर्ती श्रमण सघ एक सौ सत्तर वर्ष तक अपनी स्वतन्त्र परम्परा चलाता रहा और उसके बाद विक्रम की दूसरी शताब्दि के मध्य मे पुन. उत्तर मे के श्रमण सघ में सम्मिलित हो गया। अतएव पट्टावलियो के नामो और उनके क्रम मे अन्तर हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु यह स्पष्ट है कि आचार्य सुधर्मा से लेकर देवर्धिगणी क्षमा श्रमण पर्यन्त की पट्ट-परम्परा आगम युग की परम्परा का प्रतिनिधित्व करती है।

पूर्व उल्लिखित पट्टावलियो के सम्बन्ध मे यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जैसे आगमो को व्यवस्थित करने के लिये भिन्न-भिन्न समयो मे वाचनायें हुई, उसी प्रकार इनको भी भिन्न-भिन्न समयो म व्यवस्थित किया गया है।

आचार्य सुधर्मा से लेकर आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण तक की परम्परा को आगम युग मानने का कारण यह है कि उस समय में आगमो को सुरक्षित रखने का विशेष प्रयास हुआ। समय-समय पर पडने वाले भीषण अकालो के कारण आगम साहित्य की जो धारा छिन्न-भिन्न हुई, उसको श्रमण सघ ने एकत्रित होकर सुरक्षित रखने के लिए बार-बार वाचनायें की। वीर निर्वाण के बाद सहस्राब्दि में मुख्यतया ऐसी वाचनायें चार बार हुयी थी। जिनका सक्षेप मे सकेत इस प्रकार है .—

१-आचार्य भद्रबाहु के समय मे बहुत ही कष्टदायक द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष पडा। इस दुर्भिक्ष के कारण अनेक श्रुतधर श्रमण स्वर्गवासी हो गये और श्रुत की धारा भी कुछ छिन्न-भिन्न हो गई। दुष्काल की परिसमाप्ति के बाद इस विच्छिन्न श्रुत के सूत्र सजोने और क्रमबद्धता को बनाये रखने के लिये आर्य स्थूलभद्र के नेतृत्व मे वीर निर्वाण के १६० वर्ष के लगभग पाटलिपुत्र में श्रमण सघ एकत्रित हुआ। उपस्थित श्रमणो ने अपनी अपनी स्मृति और परस्पर एक दूसरे

से पूछकर ग्यारह अगों का तो प्रामाणिक रूप से सकलन किया । बारहवा अग आर्य भद्रबाहु के अतिरिक्त अन्य किसी को याद नही था । इसको पढने के लिये विशाल श्रमण समुदाय के साथ आर्य स्थूलभद्र को आर्य भद्रबाहु के पास नेपाल भेजा गया । आर्य स्थूलभद्र ने बारहवें अग की वाचना ग्रहण की । दस पूर्व का सूत्र और अर्थ से अध्ययन किया लेकिन अन्तिम चार पूर्वो की अर्थ वाचना से प्राप्त नही कर सके ।

२–उक्त पाटिलपुत्र वाचना के अन्तर वीर निर्वाण ८२७ से ८४० के बीच आर्य स्कन्दिल के नेतृत्व मे पुन आगम वाचना हुई । यह वाचना मथुरा मे हुई थी, इसलिये मथुरा की वाचना कहलायी । इस वाचना का कारण भी द्वादशवर्षीय अकाल था । इसके कारण ग्रहण–गुणन एव अनुपेक्षा के अभाव मे सूत्र नष्ट हो गया था । मथुरा मे एकत्रित इस श्रमण सघ ने अपनी अपनी स्मृति से कालिक श्रुत को व्यवस्थित किया ।

कुछ विद्वानो का ऐसा अभिमत है कि सूत्र तो नष्ट नही हुये थे किन्तु अनुयोग धरो का अभाव हो गया था । एक स्कन्दिलाचार्य बचे थे जो अनुयोग धर थे । उन्होने मथुरा मे एकत्रित श्रमण सघ को अनुयोग दिया था ।

३–माथुरी वाचना के समय मे ही वल्लभी मे ही आर्य नागार्जुन सूरी ने श्रमण सघ को एकत्रित करके आगमो को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया था । यहा उपस्थित श्रमण वर्ग को जो–जो आगम और उनके अनुयोग एव प्रकरण ग्रन्थ याद थे, वे लिख लिये गये और विस्मृत स्थलो को पूर्वापर सम्बन्ध के अनुसार व्यवस्थित कर लिया गया । इसमे प्रमुख नागार्जुन थे अत इस वाचना को नागार्जुनीय वाचना भी कहते है ।

उपर्युक्त वाचनाओ के पश्चात करीब १५० वर्ष के बाद वीर निर्वाण स ९८० मे पुन वलभी नगर मे देवर्धिगणी क्षमा श्रमण की अध्यक्षता मे श्रमण सघ एकत्रित हुआ । इस काल मे भी दुर्भिक्ष पडे थे, जिससे श्रमण सघ छिन्न-भिन्न हो चुका था । इसी कारण पुनः आगम वाचना की व्यवस्था करना आवश्यक हो गया था ।

इस वाचना में एकत्रित श्रमण संघ ने पूर्वोक्त दोनों वाचनाओं के समय संकलित सिद्धान्तों के अतिरिक्त जो प्रकरण ग्रन्थ विद्यमान थे इन्हें लिखकर सुरक्षित रखने का निश्चय किया । इस श्रमण समवसरण में दोनों वाचनाओं के सिद्धांतों का समन्वय किया गया और जहां तक हो सका भिन्नता मिटाने का प्रयास हुआ । माथुरी वाचना को प्रमुख एवं नागार्जुनीय वाचना को पाठान्तर के रूप में स्वीकार कर क्षत-विक्षत आगम ग्रंथों को सुरक्षित किया ।

वर्तमान में जो आगम ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनका अधिकांश भाग इसी समय में स्थिर हुआ था ।

वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दि में आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण द्वारा होने वाली यह अन्तिम आगम वाचना थी । इस आगम वाचना के साथ एक हजार वर्ष का आगम युग समाप्त हो जाता है ।

इस आगम युग में छह श्रुत केवली हुये हैं —

१ प्रभव, २ शय्यंभव, ३ यशोभद्र, ४. सम्भूति, विजय ५. भद्रबाहु, ६ स्थूलभद्र ।

इन छह श्रुत केवलियों में आचार्य भद्र-बाहु का स्थान सबसे ऊंचा है । श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों सम्प्रदाय यह एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि भद्रबाहु के पास सम्पूर्ण द्वादशांगी सुरक्षित थी । भद्रबाहु के बाद स्थूलभद्र भी बारहवें अंग के पाठी हैं । लेकिन इनमें गर्भित चौदह पूर्वं में से १० पूर्व तक का ज्ञान तो उन्हें सूत्र और अर्थ दोनों से था । लेकिन अन्तिम चार पूर्व की अर्थ वाचना उन्हें प्राप्त नहीं हुई थी । अतएव यदि दृष्टि से देखा जाय तो पूर्ण श्रुतधर, श्रुतकेवली—चतुर्दश पूर्व के पूर्ण ज्ञाता आर्य भद्रबाहु ही थे । उनके स्वर्गवास के साथ वीर निर्वाण स १७० के लगभग अर्थात् अन्तिम चार पूर्वों का विच्छेद हुआ ।

इसके बाद दस पूर्वधर, की परम्परा प्रचलित हुई । दस पूर्वधर दस आचार्य हुए हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ महागिरि, २ सुहस्ती, ३ गुणसुन्दर, ४ कालकाचार्य,

५ स्कन्दिलाचार्य, ६ रेवतिमित्र, ७. मंगू, ८ धर्म, ९. चन्द्रगुप्त १०. आर्य वज्र ।

आगमोत्तर कालीन पाट परम्परा

वारम्वार पडने वाले दुर्भिक्षो के कारण जैसे आगमिक परम्परा विच्छिन्न हुई थी, उसी प्रकार विधि-विधान, समाचारी आदि में भी एक रूपता नही रही । श्रमण साधुओ के लिये विशुद्ध रूप मे चारित्र का पालन करना अति कठिन हो गया था । इस विपमता के कारण श्रमणो मे जैसे–जैसे आध्यात्म प्रेम कम होता गया, वैसे–वैसे शिथिल प्रवृत्तियो को छिपाये रखने के लिये अपने पक्ष को प्रवल और दूसरे के पक्ष को हेय वताने के लिये स्वय जैन निग्रन्थ श्रमणो द्वारा जैन सिद्धान्तो पर प्रहार होने लगे । कई तो परिग्रहधारी हो गये । श्रावको को अपने पक्ष में करने के लिये मत्र–तत्र,टोना-टोटका आदि का प्रचार वढने लगा । परिणामत· यति पद जो अतिपवित्र गिना जाता है, महत्वहीन हो गया । अपने लिये उपाश्रय वनाना, वर घोडे चढना उत्सव करना आदि प्रवृत्तियो के नायक और प्ररक होना यति अपना कर्त्तव्र समझने लगे । साराश यह है कि साधु वर्ग से चारित्र घम का लोप हो रहा था और श्रावक समुदाय भी अपने कर्त्तव्य से च्युत होकर शिथिलाचार का पोपण करने मे प्रवृत्त था ।

इस प्रकार आगम युग के उत्तरवर्ती काल में श्रमण सघ मे एकता, सगठन शनै. शनै कम होते हुए नाम मात्र का रह गया था। फिर भी वीर शासन साधु विहीन नही हुआ था । इस दृष्टि से देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण के वाद आगमोत्तर काल मे जो विभिन्न पाट-परम्पराए उपलब्ध होती है, उनमे हमारी दृष्टि से विशेष रूप से प्रामाणिक प्रतीत होने वाली पाट परम्परा का यहा उपस्थित करते है ।

देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण के अनन्तर वार्ता पट्टधर आचार्य

२८. आर्य वीरभद्र स्वामी — २९ आर्य शंकरभद्र स्वामी
३०. आर्य यशोभद्र स्वामी — ३१. आर्य वीरसेन स्वामी

३२ आर्य वीरमग्राम स्वामी	३३ आर्य जिनसेन स्वामी
३४ आर्य हरिसेन स्वामी	३५ आर्य जयसेन स्वामी
३६. आर्य जगमाल स्वामी	३७ आर्य देवऋषि स्वामी
३८ आर्य भीमऋषि स्वामी	३९ आर्य कर्मऋषि स्वामी
४०. आर्य राजऋषि स्वामी	४१ आर्य देवसेन स्वामी
४२ आर्य शंकरसेन स्वामी	४३ आर्य लक्ष्मीलाभ स्वामी
४४ आर्य रामऋषि स्वामी	४५ आर्य पद्मऋषि स्वामी
४६ आर्य हरि स्वामी	४७ आर्य कुशलदत्त स्वामी
४८. आर्य उवनी ऋषि	४९ आर्य जयसेन स्वामी
५०. आर्य विजय ऋषि	५१ आर्य देवसेन स्वामी
५२. आर्य सूरसेन स्वामी	५३ आर्य महासूरसेन स्वामी
५४. आचार्य महासेन स्वामी	५५ आचार्य गजसेन स्वामी
५६. आचार्य जयराज स्वामी	५७ आचार्य मिश्रसेन स्वामी
५८ आचार्य विजयसिंह स्वामी	५९ आचार्य शिवराज स्वामी
६० आचार्य लालजी ऋषि	६१. आचार्य ज्ञानजी ऋषि

उपरोक्त आचार्य परम्परा ने अपने युग में आगमानुसार आचार का सुमेल बैठाने के लिये प्रयास किया। लेकिन ज्ञानजी ऋषि के समय मे शिथिलाचार का नाम ही जब श्रमण समाचारी हो गया तो यह अनुभव किया जाने लगा कि अब इसमें आमूल चूल परिवर्तन होने पर ही साध्वाचार की सुरक्षा की जा सकती है श्रमण संघ की तरह श्रावक संघ भी साध्वाचार की सुरक्षा के लिये विशेष चिन्तित था। ऐसे समय में गुजरात के मुख्य नगर अहमदाबाद मे लोंकाशाह नाम के एक महान् धर्म सुधारक उत्पन्न हुए। वे सर्राफी का धंधा करते थे। राज्य दरबार में मान था। उनके हस्ताक्षर बहुत सुन्दर थे। वे एक दिन ज्ञान ऋषि के दर्शन करने आये। उस समय ज्ञानजी ऋषि शास्त्रों को संभालने और व्यवस्था पूर्वक रखने मे लगे हुए थे। उनके एक शिष्य ने सूत्रों की एक प्राचीन–जीर्ण प्रतियां देखकर शाहजी से कहा क्या आपके सुन्दर हस्ताक्षर इन पुस्तकों का पुनरुद्धार करने मे उपयोगी नहीं हो सकते। शाहजी ने अपना प्रमोद भाव व्यक्त करते हुए सूत्रों की जीर्ण प्रतियों की प्रतिलिपि करने का कार्य स्वीकार कर लिया।

लोंकाशाह को इस कार्य से विशेष लाभ हुआ। अभी तक

आगमों में वर्णित जिस साध्वाचार का ज्ञान साधु वर्ग तक ही सीमित था। उसकी श्रावक वर्ग को भी जानकारी प्राप्त हुई। लोकाशाह की कुशाग्र बुद्धि वीर शासन के पवित्र आशय को समझ सकी। इन्हें वीर भाषित अरणगार धर्म और वर्तमान में विचरने वाले साधु वर्ग की प्रवृत्ति मे जमीन आसमान का अन्तर दिखा और श्रावक संघ के प्रमुख–प्रभावक व्यक्तियो से एतद् विषयक वार्तालाप किया।

लोकाशाह की इस मत्प्रवृत्ति की जब साध्वाचार मे विपरीत प्रवृत्ति करने वालो को जानकारी मिली तो प्रवल पतिरोध के प्रयास किये जाने लगे। लोकाशाह ने विरोध का विवेक से उन्मूलन किया और बहुत ही शालीनता के साथ आशय को चतुर्विध सघ के समक्ष रखा। अतएव अभी तक जो श्रावक साधुओ के शिथिल आचार विचार के पोषक अथवा समर्थन करने के लिये तत्पर हो उठे। श्रावको की तरह कितने ही यति भी शास्त्रानुसार अनगार धर्म का आराधन करने की ओर अग्रसर हुए।

लोकाशाह के प्रयत्नो मे साध्वाचार की सुरक्षा का वातावरण तो बन गया था और श्रमणो व श्रावको मे से अनेको ने अपनी श्रद्धा प्ररूपणा और स्पर्शना मे शुद्धिकरण करके साधु वर्ग को एक नये ओज और तेज से अनुप्राणित कर दिया था। फिर भी इस प्रवृत्ति को व्यापक एव वेगशील वनाने के लिये एक ऐसे श्रमण वर्ग की आवश्यकता थी जो आगमिक परम्परा के अनुसार दीक्षित होकर सर्वत्र प्रचार करने के लिये तत्पर हो। लोकाशाह ने अपनी भावना श्रावको के सामने रखी, किन्तु वृद्धावस्था के कारण सर्वत्र पहुचने मे असमर्थता वतलाई तब भाणजी भाई आदि ४५ श्रावकों न दीक्षित होने की अपनी अपनी भावना व्यक्त की और उन्होने भागवती प्रव्रज्या अंगीकार की।

लोकाशाह के उपदेश से जो ४५ श्रावक दीक्षित हुये थे, उन्होंने अपने गच्छ का नाम लोकाशाह गच्छ रखा। भानजी ऋषि के पश्चात् आज तक की आचार्य पाट परम्परा निम्नलिखित है :—

६२ श्री भाणजी ऋषि	६३. श्री रूपजी ऋषि
६४ श्री जीवराजजी ऋषि	६५. श्री तेजराजजी ऋषि

६६. श्री कुंवरजी ऋषि
६७ श्री हर्ष ऋषि
६८. श्री गुलाबचन्दजी ऋषि
६९. श्री परशुरामजी म.
७० श्री लोकपालजी महाराज
७१ श्री महाराजजी स्वामी
७२ श्री दौलतरामजी महाराज
७३ श्री लालचन्दजी महाराज

आचार्य श्री दौलतरामजी म सा और अजरामरजी स्वामी सम कालीन थे। पूज्य श्री दौलतरामजी म. सा ने स १८१४ फाल्गुन शुक्ला ५ को करीब १३ वर्ष की उम्र मे दीक्षा ली थी। आप कालापीपल (मालवा) ग्राम के वासी थे व जाति बघेरवाल थी।

आप अत्यन्त समर्थ विद्वान और क्रियापात्र सत थे। विचरण क्षेत्र मुख्य रूप से कोटा, बून्दी (हडौती प्रदेश) के साथ-साथ मेवाड़ मालवा था। आप एक बार विचरते हुए दिल्ली पधारे। उस समय दिल्ली मे दलपतराजजी नामक एक शास्त्रज्ञ श्रावक थे। वे मुख्य रूप से द्रव्यानुयोग के मर्मज्ञ थे। उनके द्वारा रचित नवतत्व प्रश्नोत्तर, दलपतराज के प्रश्नोत्तर समन्वित छप्पनी, नय निक्षेप-प्रमाण आदि ग्रथ ग्रथों की तुलना करते हैं।

पूज्य श्री दौलतरामजी म सा ने श्रावक श्री दलपतराजजी के सामने शास्त्रो के अध्ययन करने की भावना रखी, तब श्रावकजी ने अध्ययन कराने की स्वीकृति देते हुये कहा कि पहले दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन करायगे। इस पर पूज्य श्री ने कहा कि दशवैकालिक सूत्र की वाचना तो अनेक बार ले चुका हू और शिष्य-प्रशिष्य भी ले चुके हैं। अत भगवती सूत्र की वाचना लेने की भावना है। तब श्रावकजी ने कहा कि जैसी आपकी इच्छा, लेकिन मेरी दृष्टि से तो पहले दशवैकालिक सूत्र की वाचना लेना अच्छा रहेगा। दशवैकालिक सूत्र की वाचना प्रारम्भ हुई और श्रावकजी ने भिन्न-भिन्न दृष्टियो से सूत्र गत आगम को स्पष्ट करते हुये आगमों का सार समझाया।

पूज्य श्री और श्रावकजी के बीच हुये प्रश्नोत्तर आज भी उपलब्ध हैं। जिन्हे पढने से ज्ञात होता है कि दोनों महापुरुष समर्थ ज्ञानी थे।

पूज्य श्री दौलतरामजी म. सा के आगम ज्ञान की प्रशसा श्री अजरामरजी स्वामी ने सुनी, वे स्वय भी प्रकाण्ड विद्वान् व आगम मर्मज्ञ थे। फिर भी आपने पूज्य श्री दौलतरामजी म. सा. के पास

ज्ञान अभ्यास करने की इच्छा दर्शाई । तब लीवडी श्री संघ ने एक व्यक्ति के साथ पूज्य श्री दौलतरामजी म सा की सेवा मे प्रार्थना पत्र भेजा । उस समय पूज्य श्री कोटा–बून्दी में विचरण कर रहे थे । उन्होने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लीवडी की ओर विहार कर दिया । प्रार्थना पत्र लाने वाला व्यक्ति अहमदाबाद तक तो साथ रहा और बाद में वहा से श्री सघ को पूज्य श्री के पधारने का सन्देश देने लीवडी रवाना हो गया ।

पूज्य श्री दौलतरामजी म सा के लीवडी पधारने पर भाव-भाना स्वागत किया गया । उन्ही दिनो पूज्य अमरसिंहजी म. सा. के नेश्रायवर्ती और समकित सार के कर्ता पण्डित मुनि श्री जेठमलजी म सा, पालनपुर विराज रहे थे । वे शास्त्र अध्ययनार्थ लीवडी पधारे थे ।

पूज्य श्री दौलतरामजी म सा के चार शिष्य थे ।

१ श्री गणेशारामजी म सा २ श्री गोविन्दरामजी म. सा
३ श्री लालचन्दजी म सा ४ श्री राजारामजी म सा

आचार्य श्री लालचन्दजी म सा. :

पूज्य श्री दौलतरामजी म सा के पट्टधर श्री लालचन्दजी म सा अन्तडी ग्राम के निवासी और सिलवट जाति के थे । वे एक कुशल चित्रकार थे । एक बार आप चित्र बनाते–बनाते कार्यवश बाहर चले गये, जाने की जल्दी में चित्र बनाने की सामग्री–रग, तूलिया आदि ज्यो की त्यो खुली पडी रही । सयाग से एक मक्खी रग मे फस गई । लौटने पर उसे मरा देखकर मन मे अनेक विचार आये और कुछ ग्लानि पैदा हुई ।

सौभाग्य से उन्ही दिनो पूज्य श्री दौलतरामजी म. सा अन्तडो ग्राम मे पधारे हुये थे । आप उनके पास पहुचे और अपनी मन. स्थिति बतलाते हुए दीक्षित होने का भाव प्रगट किया । पूज्य श्री ने योग्य पात्र जान दीक्षा दी कालान्तर मे आप पूज्य श्री दौलतरामजी म सा के पट्टाधिकारी हुए । आपके समय में कोटा सम्प्रदाय मे २७ विद्वान सत प्रसिद्ध हुये थे ।

पूज्य श्री लालचन्दजी म सा के नौशिष्यो में पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म सा. सुप्रसिद्ध, आचार निष्ठ विद्वान सत थे ।

भगवान महावीर स्वामी के बाद आर्य सुधर्मा स्वामी से लेकर आचार्य लालचन्दजी, म सा तक ७३ आचार्यों का उल्लेख किया जा चुका ।

जिस प्रकार लोकाशाह ने शिथिलाचार के विरुद्ध क्रान्ति का शखनाद किया था उसी प्रकार आचार्य श्री लालचन्दजी म. सा. के सुशिष्य महान् क्रियोद्धारक आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. ने तत्कालीन शिथिलाचार को हटाने के लिये तथा संयमीय अक्षुण्णता बनाए रखने के लिए सम्यक्ज्ञान युक्त क्रियाओ का आचरण कर आत्मशुद्धि के साथ जनता के समक्ष एक विशिष्ट आदर्श प्रस्तुत किया। जिनके सान्निध्य में साधुमार्ग की सयमीय क्रान्ति, जिनाकाश मे उद्घोषित होती हुई जन-जन के मन को आन्दोलित कर उठी ।

आपश्री की उत्कृष्ट साधना से प्रभावित होकर साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओ का विशाल समूह स्वतः ही आपश्री को अपना आराध्य मानने लगा । यह समूह, जैन सघ के अन्दर होते हुए भी अलग-थलग ही परिलक्षित होने लगा ।

जिस प्रकार गगा-यमुना नदी के अन्दर मिल जाने पर भी उसका पाट दूर तक अलग-थलग दिखाई देता है ।

आपश्री ने कभी भी अलग सप्रदाय बनाने का प्रयास नहीं किया यह तो स्वतः ही चतुर्विद्ध सघ तैयार हो गया और उन्होने सघ नायक के रूप मे आपश्री को मान लिया । इस प्रकार ७४ वें पाट पर आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा विराजमान हुए ।

जिन आगे के आचार्यों के नाम निम्न है—

७४ महान्क्रियोद्धार आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा
७५ उद्भट विद्वान् आचार्य श्री शिवलालजी म. सा
७६ निरासक्तयोगी आचार्य श्री उदयसागरजी म. सा.
७७ महानक्रियावान् आचार्य श्री चौथमलजी म. सा.

७८ दुर्जय कामविजेता आचार्यश्री श्रीलालजी म.सा.
७९. ज्योतिर्धर क्रान्तद्रष्टा आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा
८० शातक्राति के जन्मदाता आचार्यश्री गणेशीलालजी म सा.
८१ समता समीक्षण योगी आचार्यश्री नानालालजी म.सा
(वर्तमान आचार्यश्री)

इन महापुरुषो ने साधुमार्ग की परंपरा को अक्षुण्ण रूप मे प्रवाहित किया और वर्तमान आचार्य श्री नानेश के सान्निध्य मे साधुमार्गी संघ निरन्तर विकासमान है।

इन आठो क्रान्तिकारी आचार्यो का जीवन-वर्णन 'अष्टाचार्य गौरव गगा' मे किया गया है।
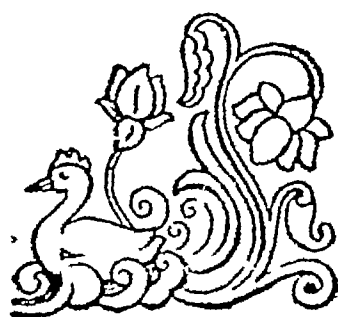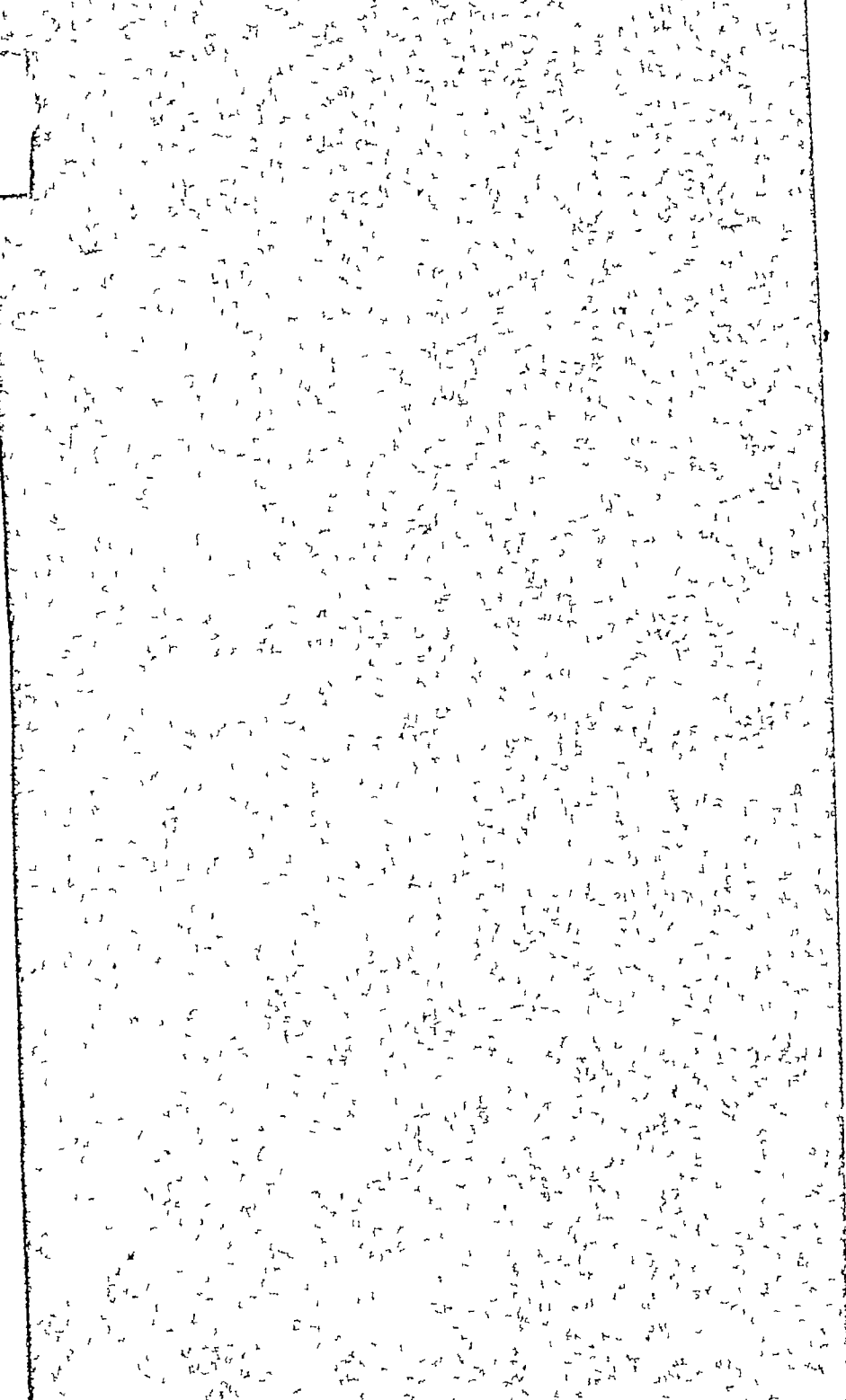
अष्टाचार्य-गुण-सौरभ

'मुनिज्ञान'

अहो रूप अहो ज्ञानं, अहो ध्यानं अहो गुणाः ।
अहो भक्तिः अहो शक्तिः सर्वं सर्वं अहो अहो ।।

भावार्थ ।

- अहो : आपका सौम्य रूप धन्य है ·
- अहो : आपकी ज्ञानराशि धन्य है :
- अहो : आपकी प्रशस्त ध्यानसाधना धन्य है :
- अहो : आपका गुणसमूह धन्य धन्य है
- अहो : आपकी प्रभुभक्ति धन्य है
- अहो · आपका सयम-पराक्रम धन्य है ·
- अहो , आपका सम्पूर्ण जीवन ही कैसा है ।
  यह सब वर्णनातीत अद्‌भुत है ·

आचार्य श्री हुक्मीचंदजी महाराज साहब

: अष्टकम् :

(अनुष्टुप् छन्द)

(१)

दु.ख-पूर्णे हि ससारे ऐश्वर्यनिचयैर्युत। ।
सुख प्राप्तुं न शक्नोति, क्षणभगुरजीवने ।।

भावार्थ : दु खो से परिपूर्ण इस ससार मे ऐश्वर्यों से युक्त भी मनुष्य इस क्षणभंगुर जीवन मे सुख पाने में समर्थ नही है ।

(२)

प्रविचार्यं च हृत्पिंडे क्षयार्यं सर्वकर्मणाम् ।
ससारात् विरतो भूत्वा, श्रामण्ये सयमे रतः ।।

भावार्थ : इस प्रकार हृदय मे विचार कर समस्त कर्मो का क्षय करने के लिए समार से विरक्त होकर आप श्रमणो के सर्वविरतिरूप सयम से अनुरक्त हो गए ।

(३)

साधवः समये यस्मिन् जीवने सुष्ठु सादरम् ।
शास्त्रानुसारमाचार, केऽपि कुर्वन्ति नो भुवि ।।

भावार्थ । जिस समय बहुत मे साधु इस क्षेत्र में आगमानुसार सयमक्रियाओं का परिपूर्ण रूप से पालन नहीं करते थे ।

(४)

परीषहाश्च ससह्य इन्द्रियाणा दम' कृतः ।
तपसावृत्तिसक्षेपै, जीवन साधु निर्मितम् ।।

भावार्थ : तब आपश्री ने पृथक् विचरण कर परीषहो एव उपसर्गों को सहन करते हुए इन्द्रियो को विशेष रूप से सयमित किया, वृत्तिसक्षेप तपश्चरण का आराधन करते हुए द्रव्य-मर्यादा आदि अनेक प्रकार की कठोर प्रतिज्ञाओ का पालन कर जीवन को भव्य बनाया ।

(५)

धृत्वा धृतिं विहारश्च, ग्रामे ग्रामे कृतो महान् ।
यस्य क्रिया-प्रभायाश्च, विस्तरोऽभूच्च सर्वत ।।

भावार्थ : सयम-जीवन का कठोरता के साथ धैर्यपूर्वक पालन करते हुए ग्राम-ग्राम मे उग्र विहार किया, जिससे पूज्यश्री की दिव्य प्रभा का अत्यधिक विस्तार हुआ ।

(६)

कर्मणाञ्च विनाशाय, विदधे सुतप. क्रियाम् ।
वह्नौ स्वर्णसमा शुद्धिरात्मनो विहिता हिता ।।

भावार्थ कर्मों का पूर्ण रूप से क्षय करने के लिए २१ वर्ष तक वेले वेले की कठोर तपश्चर्या की । यथा-स्वर्ण की शुद्धि अग्नि से होती है तथैव आपश्री ने हितकर आत्मशुद्धि तपश्चरण से की ।

(७)

अहिंसासत्यमस्तेय, ब्रह्मचर्यापरिग्रहम् ।
सिद्धान्तानां स्वरूपं च, जनस्याग्रे निरूपितम् ।।

भावार्थ : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का तथा

जिनोपदिष्ट धर्म के मूलभूत सिद्धान्तो का विविध प्रकार का स्वरूप देश की जनता के समक्ष रखा ।

(८)

त्यागवैराग्यभावेन, श्रमणत्व विकासितम् ।
तस्यैव सुप्रभावेण, समाजोऽद्य प्रदीप्यते ।।

भावार्थ . त्याग-वैराग्य की प्रबल भावना से श्रमणत्व का अर्थात् चतुर्विध सघ का विस्तार किया । उसी के सुप्रभाव से आज भी सम्पूर्ण समाज देदीप्यमान हो रहा है ।

द्वितीयमष्टकम्

(त्रोटक छन्द)

(१)

गृह-मोह-ममत्व-विनाशकरं,
शुभ-सयम-भाव-रत विरतम् ।
सुसमाधियुत - गणिकीर्तिधर,
प्रणमामि महामुनिहुक्मिगुरुम् ।।

भावार्थ . गृह-परिवार सम्बन्धी के मोह-ममत्व का नाश करने वाले, ससार से विरत, प्रशस्त सयम भाव में रत, उत्तम समाधि से युक्त, आचार्यों के योग्य कीर्ति को धारण करने वाले-महामुनि श्री हुक्मीचन्दजी महाराज को, मैं नमस्कार करता हू ।

(२)

प्रशमादि-विकास गुणैः कलित—
मुपदेश-सुधा-चलित मुदितम् ।
महिते निज-मुक्ति-पथे निरत,
प्रणमामि महामुनिहुक्मिगुरुम् ।।

भावार्थ : शम-संवेगादि विकास के गुणो से शोभित, अमृतोपम उपदेश को प्रवाहित करने वाले, प्रसन्नचित्त, प्रशस्त मोक्षपथ मे निरत महामुनि श्री हुक्मीचन्दजी महाराज को मैं नमस्कार करता हूं।

(३)

भव-पातक-मान-रुजा रहित,
सुखदायक-भाव-युत सतत ।
भवभीतिहर शिव-सत्यवर,
प्रणमामि महामुनिहुक्मिगुरुम् ।।

भावार्थ जन्म-मरणरूप ससार के गर्त मे गिराने वाले अभिमान रूप आन्तरिक रोग से रहित, निरन्तर सुखदायक भाव से युक्त, भव-भीति को दूर करने वाले, शिव-सत्य का वरण करने वाले महामुनि श्री हुक्मीचन्दजी महाराज को मैं नमस्कार करता हूं।

(४)

तपसा सहित विदुषा महित,
शशि-पूर्ण-सुशोभितदिव्यमुखम् ।
रवि-तुल्य-विभासित-दीप्तिधर,
प्रणमामि महामुनिहुक्मिगुरुम् ।।

भावार्थ : २१ वर्ष पर्यन्त बेले बेले के तप से युक्त, विद्वानो द्वारा पूजनीय, पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा के समान दिव्य मुख वाले, सूर्य के समान विभासित दीप्ति से युक्त महामुनि श्री हुक्मीचन्दजी महाराज को मैं नमस्कार करता हू।

(५)

मनसा वचसा वपुपा विमल,
करुणा-धिषणा-गरिमादियुतम् ।
सुनयै सगुणैः सुकृतैरनघ,
प्रणमामि महामुनिहुक्मिगुरुम् ।।

भावार्थ : मन वचन और वपु(शरीर)से निर्मल, करुणा, धिषणा(बुद्धि) तथा गरिमादि गुणो मे युक्त, मुनयो से सगुणों से एवं सुकृतों से अनवद्य–चारित्री महामुनि श्री हुक्मीचन्दजी महाराज को मैं नमस्कार करता हूं ।

(६)

नगरे नगरे सुख–शान्तिकर,
बहु-साधु-जनै. विनयाभिनुतम् ।
निजकर्मविदारकर विशद,
प्रणमामि महामुनिहुक्मिगुरुम् ॥

भावार्थ : नगर नगर मे सुख शान्ति का सचार करने वाले, अनेक मुनिवरो द्वारा विनयपूर्वक अभिवन्दित, उज्ज्वल चरित्रयुक्त, आत्मा को मलीमस बनाने वाल कर्मों का विनाश करने वाले निर्मल महामुनि श्री हुक्मीचन्दजी महाराज को मैं नमस्कार करता हूं ।

(७)

शरणागत–रक्षणदक्षवर,
जगति प्रथित सुयशोभरितम् ।
जनसकटनाशक–भक्तिरत,
प्रणमामि महामुनिहुक्मिगुरुम् ॥

भावार्थ शरणागत प्राणियों की रक्षा करने मे दक्ष, जनो में श्रेष्ठ, जगतप्रसिद्ध, सुयश से परिपूर्ण, जन–जन के सकट नाशक, परमात्मभक्ति मे रत महामुनि श्री हुक्मीचन्दजी महाराज को मैं नमस्कार करता हूं ।

(८)

भव-सागर-पक-निमग्ननृणा,
जिन-भाषितबोध-सुख प्रददौ ।

तमह गुण-सागर बुद्धिनिधि,
प्रणमामि महामुनिहुक्मिगुरुम् ॥

भावार्थ : भव-सागर-पक (कीचड) मे निमग्न मनुष्यो को जिन्होंने सुखकारी जिनोपदिष्ट बोध प्रदान किया, उन गुणो के सागर और बुद्धि के निधान महामुनि हुक्मीचन्दजी महाराज को मैं नमस्कार करता हू ।

छद अनुष्टुप–प्रशस्ति

गुरुहुक्म्यष्टक स्तोत्र
मुनिज्ञानेन निर्मितम् ।
पठन्ति ये नरा· भक्त्या,
सिद्धिसौध व्रजन्ति ते ॥

भावार्थ . मुनि 'ज्ञान' के द्वारा निर्मित पूज्य हुक्म्यष्टक स्तोत्र को जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पठन-श्रवण करते हैं, वे मुक्ति रूपी महल को प्राप्त करते हैं ।

आचार्य श्री शिवलालजी महाराज साहब

❀ अष्टकम् ❀

(१)

विशिष्टलक्षणैर्युक्तो, धामनियाख्यग्रामके ।
अन्वर्थनामसयुक्त, समुद्भूतः शिवो गणी ॥

भावार्थ : मध्यप्रदेश के अन्तर्गत धामनिया नामक ग्राम में अर्थ के अनुसार नाम वाले अर्थात् शिव-कल्याणकारी एव शुभ लक्षणो से सम्पन्न शिवाचार्य (आचार्य श्री शिवलालजी महाराज) का जन्म हुआ ।

(२)

संपूर्णे शैशवे काले, जैन-धर्मः समाश्रितः ।
क्षणिकान् कामभोगांश्च, समाज्ञाय जहौ शिवः ॥

भावार्थ : बाल्यकाल के पूर्ण होने पर शिवाचार्य ने कामभोगों की क्षणिकता को जानकर उनका परित्याग किया तथा आर्हत् धर्म को स्वीकार किया ।

(३)

संसारासारता ज्ञात्वा, सुसंयमगुणास्तथा,
परमात्मपद प्राप्तुं, श्रमणत्व च धारितम्

भावार्थ । संसार की असारता एव संयम के निर्मल गुणों या शुद्ध सयम के गुणों को जानकर परमात्मपद को प्राप्त करने के लिए श्रमणत्व अवस्था को अगीकार किया ।

आत्मान पावन कर्तु, तपस्याकरणे रतः ।
स्वर्णतुल्या कृता शुद्धि, स्वात्मनो वृद्धिकारिका ॥

भावार्थ : आपने आत्मा को निर्मल करने के लिए लगभग ३५ वर्ष तक निरन्तर एकान्तर तप किया । जैसे अग्निप्रयोग से स्वर्ण की शुद्धि होती है, उसी प्रकार आपने तपश्चर्या द्वारा गुणो की वृद्धिकारक आत्मशुद्धि की ।

(५)

श्रमणानां समाचारी योक्ता भगवता स्वयम् ।
मूलोत्तर-गुणान्सर्वान् बोधयामास देशनैः ॥

भावार्थ : प्रभु महावीर ने श्रमणो का पालन करने योग्य जो समाचारी स्वयं अपने मुखारविन्द से फरमाई है उसे तथा मूल व उत्तर गुणो को धर्मदेशना के द्वारा जनता के समक्ष रखा ।

(६)

नराणामपदेशेन, प्रदत्त जीवनं नवम् ।
देशनां च सुधां कृत्वा, मर्त्याः धर्मे दृढीकृताः ॥

भावार्थ : भव्य प्राणियो को जीवन सुखकारी आत्मबोध प्रदान कर जीवन की नई दिशा प्रदर्शित की । देशना-सुधा का पान करा कर धर्म मे सुदृढ बनाया ।

(७)

अधर्मस्य विनाशार्थं सुधर्मस्य प्रचारणे ।
देशे-देशे भ्रमित्वा हि, स्याद्वादादि प्रसारितम् ॥

सुधर्मञ्च-प्रचारितुम्

भावार्थ : कुधर्म का नाश करने के लिए और सुधर्म का प्रचार करने के लिए देश-देश मे भ्रमण कर अपनी प्रखर विद्वत्ता से

जिन–भाषित स्याद्वाद आदि सिद्धान्तों को विविध प्रकार से प्रचारित किया ।

(८)

जीवनान्त समाज्ञाय, अयुद दयायश्युददौ पदम् ।
देहोत्सर्गः कृतो येन भव्यपण्डितमृत्युना ॥

भावार्थ : अपने जीवन के अवसार को जानकर अपने सुयोग्य शिष्य श्री उदयसागरजी को युवाचार्य पद प्रदान किया । तत्पश्चात् भव्य जीवों को ही प्राप्त होने योग्य पण्डितमरण से देह का उत्सर्ग किया ।

आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज साहब

❀ अष्टकम् ❀

(१)

जोधपुरमिति ख्यात विख्यात, मरुभूमिविभूषणम् ।
नगर प्रचुरा यत्र, जैनधर्मानुयायिनः ॥

भावार्थ : मरुधरा का अलकार रूप जोधपुर नाम से प्रसिद्ध नगर है, जिसमे जैन धर्म के अनुयायी विपुल सख्या में निवास करते हैं ।

(२)

एकदा नगरे रम्ये, गुणैः सर्वैः समायुतः ।
रविरिव प्रभोपेतः, उदयोऽभ्युदितो महान् ॥

भावार्थ : एकदा इस रमणीक नगर में सर्व गुणो से सपन्न तथा सूर्य के समान प्रभा से युक्त 'उदय' शिशु का उदय–समुद्भव (जन्म) हुआ ।

(३)

प्रसृते सुख–शान्ती च, पित्रोः पावनमानसे ।
प्राप्य सल्लक्षरण पुत्र, मुदिता मुदितस्तथा ॥

भावार्थ : सुन्दर एव प्रशस्त शुभ लक्षणो से युक्त पुत्र को प्राप्त कर माता के मन मे बहुत प्रसन्नता हुई, पिता का चित्त भी आह्लादित हो उठा ।

शशीव शुक्लपक्षस्य, वर्द्धितश्च दिने दिने ।
यौवन च यदा प्राप्तो गत उद्वाहमण्डपे ।।

भावार्थ : शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कलाओ के समान बालक उदय अहर्निश वृद्धि को प्राप्त होते गए । फिर क्रमशः शैशवअवस्था को पार कर जव यौवन अवस्था मे प्रवेश किया तो सासारिक परपरा के अनुसार आप विवाह करने के लिए मण्डप मे गये ।

(५)

उष्णीष, पतित शीर्षात्, भोगाच्च विरतस्तदा ।
श्रमणत्व गृहीत तत् निजात्मा निर्मल: कृत: ।।

भावार्थ : तव वहा आपके मस्तक मे साफा नीचे गिर गया । इस घटना से क्षणिक काम-भोग से आप विरक्त हो गये । तदनन्तर भवाब्धि को पार कराने वाले पोत समान संयम को अगीकार कर आत्मिक निर्मलता मे लीन हो गये ।

(६)

श्रुते सुकोविदैर्विज्ञै सुरा-सुरेन्द्रदुर्जयम्
विषयभोगमब्रह्म, जितमात्मवलेन हि ।।

भावार्थ : श्रुतज्ञान मे पारगत तथा विवेकशील उदयाचार्य ने सुरेन्द्रों एव असुरेन्द्रो द्वारा भी अजेय विषय-भोग रूप अब्रह्म (मैथुन) को अपने आत्म-वल से जीत लिया ।

(७)

अनेकान्तकृतान्तज्ञो, मुमुक्षूणा शिरोमणि. ।
ज्ञानाचारेण सपन्न:, गणीशोदयसागर. ।।

भावार्थ : स्याद्वाद सिद्धान्त के रहस्य के विज्ञाता, मुक्ति के इच्छुक

भव्यजनो में शिरोमणि श्रीमद् उदयाचार्य ने ज्ञान-पूर्वक आचरण कर स्वात्मशुद्धि की ।

(८)

एकादशाङ्गशास्त्राणा, पठने पाठने रत : ।
सयमाराधको धीमान्, समाधिमरण गत : ॥

भावार्थ : विशुद्ध बुद्धि से विभूषित वे एकादशाङ्ग शास्त्रो के पठन-पाठन में लीन रहे, निरन्तर सयम की आराधना में तत्पर रहे और अन्त में समाधिकपूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए ।
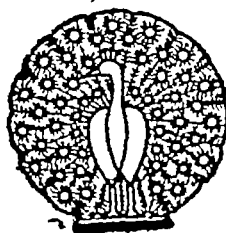
आचार्य श्री चौथमलजी महाराज साहब

❀ अष्टकम् ❀

(१)

मरुप्रदेशे पालीति, नगरमस्ति सुन्दरम् ।
तत्र—चौथ-रविर्जातः, तस्य ज्योतिर्विभासितम् ।।

भावार्थ · मरुस्थल प्रांत मे पाली नामक भव्य नगर है । इस नगर में बाल–सूर्य की भाति गुणपुंज चौथाचार्य (आचार्य-श्री चौथमल जी महाराज) विभासित हुए, जिनकी साधनामय ज्योति दिग्-दिगन्त में विकीर्ण हुई ।

(२)

पापतमोविनाशाय, प्रकाशाय निजात्मनः ।
ज्ञात्वाऽसारं च संसारं, भोगाच्च विरतोऽभवत् ।।

भावार्थ : पाप रूपी काली घटा का नाश करने के लिए तथा आत्मा के स्वाभाविक शुद्ध स्वरूप को विकसित करने के लिए संसार की असारता का बोध प्राप्त कर आप सांसारिक भोगोपभोग से विरक्त हो गए ।

(३)

वीरभूमौ समुद्भूय, सुवीरो भवितुं महान् ।
परीषहोपसर्गाश्च, साम्येन शमिताः सदा ।।

भावार्थ · वीरभूमि मे उत्पन्न होकर कर्म-विजेता बनने के लिए आपने परिषहों एवं उपसर्गों को साम्य भाव से सदा समाहित किया ।

संसारासारतां ज्ञात्वा,

(४)

विचाराऽचारपक्षेषु, जनस्याग्रे सुदेशनाम् ।
दत्वा जिनेन्द्रधर्मस्य, ज्ञानरश्मिर्विभासिता ॥

भावार्थ : जनमेदिनी के समक्ष जिनोपदिष्ट विचार एव आचार के बहुमुखी स्वरूप को समझाकर जिन धर्म की अलौकिक ज्ञानरश्मि को स्वमनीषा से विभासित किया ।

(५)

शास्त्र-ज्ञान समदाय, दीप्ते गणिवरे पदे ।
क्रियया निर्मलो भूत्वा, शुद्धिस्स्वस्यात्मनः कृता ॥

भावार्थ : शास्त्रज्ञान को प्राप्त करके गणिवर–आचार्य–पद को सुशोभित किया । बोधपूर्ण कठोरतम आचरण से निर्मल होकर आत्मिक स्वरूप मे रमण करने लगे-आत्मशुद्धि की ।

(६)

ज्ञान-ध्यान-समायुक्तः, साधनायां रतो दृढः ।
कृत्वाऽत्युग्रतपश्चर्यां, मुक्तिमार्ग प्रसाधित ॥

भावार्थ : आप ज्ञान-ध्यान से युक्त होते हुए साधना मे अतिशय दृढ हुए तथा आपने अतीव कठोर तपश्चर्या करके मुक्ति-मार्ग की उत्कृष्ट साधना की ।

(७)

यस्य क्रिया प्रभावेण, श्रामण्य सुप्रतिष्ठितम् ।
तत्सौरभभरेणैव, वासित जन-जीवनम् ॥

भावार्थ : जिनकी अनुपम क्रिया के प्रभाव से श्रमणत्व-साधुपद की प्रतिष्ठा मे वृद्धि हुई । उसकी सयमरूपी भीनी-भीनी सुगन्ध से जन-जन का जीवन सुवासित हुआ ।

स्वायुः पूर्णं समाज्ञाय, श्री श्रीलालमहात्मने ।
युवाचार्यपदं दत्वा, गतः स्वर्ग-सुखाश्रयम् ।।

भावार्थ : मरणधर्मा शरीर की क्षीणता से अपने आयुष्य की समाप्ति सन्निकट जानकर चतुर्विध संघ की सुव्यवस्था के लिए श्री श्री लालजी नामक सुयोग्य शिष्य को युवाचार्य पद प्रदान कर आपने अनुपम सुखालय (स्वर्ग) की ओर प्रयाण किया ।

आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब

❀ अष्टकम् ❀

(१)

कामशत्रुविजेतुश्च, सर्वाङ्गेण सुशोभितुः ।
श्री श्रीलाल-गणीशस्य टोंक-ग्रामे समुद्भवः ॥

भावार्थ । सुरासुरेन्द्रो द्वारा दुर्जय काम-शत्रु को जीतने वाले, सर्वाङ्गो से सुशोभित आचार्य श्री श्रीलालजी म. सा का 'टोंक' ग्राम में जन्म हुआ ।

(२)

विरक्त-भावसपृक्त', धार्मिकाचरणे रत. ।
जले कमलनिर्लिप्तो, वभूव गृहिजीवने ॥

भावार्थ : पूज्य श्री वचपन से ही विरक्ति के भाव में विचरण करते हुए सामायिक, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, ध्यान आदि धार्मिक आचरण मे लीन रहते थे । जिस प्रकार जल में कमल निर्लिप्त रहता है उसी प्रकार आप भी गृहस्थ अवस्था रहते हुए संसार से पूर्ण विरक्त थे ।

(३)

शैशवसमयोद्वाह जनकाभ्यां च कारितः ।
तथापि पूर्णरूपेण, ब्रह्मचर्यं सुपालितम् ॥

भावार्थं । पुत्र की विरक्त अवस्था देखकर कहीं यह साधु न बन जाय, इस विचार से माता-पिता ने वचपन मे ही आपका विवाह

कर दिया। फिर भी आपने सुन्दर ढंग से दृढता के साथ 'तवेसु वा उत्तम-बमचेर' समस्त तपश्चरणो में उत्तम ब्रह्मचर्य का पालन किया।

(४)

चुन्नीलाल· पिता यस्य, जननी 'चाद' नामिका।
श्री श्रीलालस्तयोः पुत्रो, द्यं तितो विश्व मण्डले ॥

भावार्थ : आपश्री के पिता का नाम चुन्नीलालजी और माता का नाम चादकवर बाई था। उनके पुत्र पूज्य श्री श्रीलालजी विश्व मे देदीप्यमान हुए।

(५)

स्वेनैव दीक्षितो भूत्वा, शास्त्रस्याध्ययन कृतम्।
नगरे-नगरे भ्रान्त्वा, जैन धर्मः प्रसारितः ॥

भावार्थ : आप माता-पिता के द्वारा आज्ञा प्राप्त न होने पर प्रथम स्वयमेव दीक्षित हुए तथा आगमो का गहन अध्ययन किया और देश देश मे नगर-नगर मे भ्रमण कर जैनधर्म का प्रचार-प्रसार किया।

(६)

आचार्यपदवी प्राप्य, शिष्याणा सुष्ठु शिक्षणे।
नक्तदिवा च शास्त्राणा, स्वाध्याय-करणे रतः ॥

भावार्थ : अपने तप संयम एव प्रतिभा के बल मे आचार्य पद प्राप्त कर आचार्य श्री शिष्यो को सुशिक्षित करने मे और निरन्तर स्वाध्याय मे अनुरक्त रहे।

(७)

एषां सदुपदेशेन, बहुभिः भव्यप्राणिभिः।
सप्त कुव्यसन त्यक्त्वा, जैनधर्मश्च पालितः ॥

भावार्थ : आपश्री के उपदेशामृत से बहुत से भव्य आत्माओं ने सप्त-कुव्यसनों का त्याग कर जैनधर्म स्वीकार किया ।

(८)

स्वायु: पूर्णं समाज्ञाय योग्यं ज्ञात्वा जवाहरम् ।
आचार्यपदवीं दत्वा प्राप्तः चिरशिवालयम् ॥

भावार्थ : अन्त मे अपनी आयु की पूर्णता को जानकर प्रकृष्ट प्रतिभा-सपन्न, सुयोग्य मुनि-पुगव जवाहरलालजी महाराज को अपना उत्तराधिकारी आचार्य बनाकर आपने आनन्दधाम प्राप्त किया ।
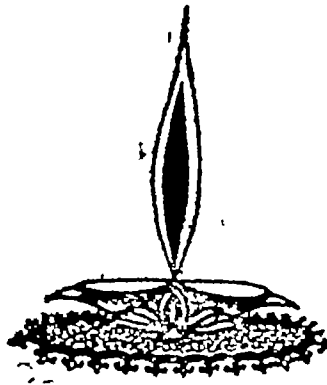
आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज साहब

❀ अष्टकम् ❀

(१)

कषाय-ग्रस्त ससारं, दृष्ट्वा चे तत्र नो रतम् ।
आत्मावबोध-लब्ध्यर्थं 'मगन' शरण गतः ॥

भावार्थ । ससार को कषायो से ग्रस्त देखकर उनका मन ससार में रत नहीं हुआ । तब आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिये आप श्री मगनमुनिजी की शरण को प्राप्त हुए ।

(२)

सार्धमासे गुरावेव, दुर्भाग्येण दिवगते ।
आगममर्म-बोधार्थं, श्रावकात् पठन कृतम् ॥

भावार्थ : दुर्भाग्य से डेढ मास मे ही गुरुजी स्वर्गवास को प्राप्त हो गये । तब आगम-ज्ञान पाने हेतु आपने श्रावको से अध्ययन किया ।

(३)

जित्वा प्रसृतसघर्षं, समत्वैः पूरितं जगत् ।
महात्मगान्धिना प्रोक्त, भारते द्वौ जवाहरौ ॥

भावार्थ : ततश्च संसार मे प्रसृत सघर्ष को दूर करके समत्व से ससार को पूरित किया । जिससे विश्ववंद्य बापू महात्मा गांधी द्वारा कहा गया-भारत मे एक नही, दो जवाहर हैं । राजनीति

में पडित जवाहरलाल नेहरू और धर्मनीति में आचार्य श्री जवाहरलालजी हैं ।

(४)

ज्योतिर्विकसित यस्य पूज्यस्याधिगत पद ।
अभूवनुत्तमा शिष्या·, रत्नत्रयसमन्विता। ॥

भावार्थ : जिनकी ज्ञान-ज्योति का विकास हुआ और आप आचार्य पद पर आसीन हुए । तब उनके रत्नत्रय युक्त तथा अनेक गुणो से उत्तम शिष्य हुए ।

(५)

धर्मभ्रमाऽपनोदाय, मोदायोदारचेतसाम् ॥
सद्धर्म-मण्डन कृत्वा चानुकम्पा-कृति कृता ॥

भावार्थ : धर्म सम्बन्धी भ्रम को निवारण करने के लिए तथा उदार अर्थात् दया-दानादि मे उत्साहवान् चित्त वाले जनो के प्रमोद के लिए 'सद्धर्ममण्डन' नामक ग्रन्थ की तथा 'अनुकम्पाविचार' आदि सद्ग्रन्थो की रचना की ।

(६)

विद्याविशारद स्वामी, शास्त्रार्थे विजयी सदा ।
कवीना विदुषा वैया-करणाना सुधी: प्रधी: ॥

भावार्थ : आचार्य प्रवर विद्याओ में विशारद थे तथा शास्त्रार्थ करने में सदा विजयी हुए । कवियो, विद्वानो और वैयाकरणों में श्रेष्ठ थे । कुशाग्र बुद्धि से सम्पन्न थे ।

(७)

सुदीर्घकाल-पर्यन्त, सुशीलादि-क्रियाकर· ।
भीनासर-यशोभूमौ, सप्राप्तस्त्रिदशालयम् ॥

भावार्थ : दीर्घकाल पर्यन्त सयम ब्रह्मचर्यादि क्रियाओ का पूर्णरूपेण पालन करते हुए बीकानेर के उपनगर यशोभूमि भीनासर में आप स्वर्गलोक को प्राप्त हुए ।

(८)

देहाज्जवाहरो नास्ति यशसा तु सनातनः ।
ज्ञानेन्द्रमुनिना तस्य गुणाना कीर्त्तन कृतम् ॥

भावार्थ : यद्यपि वर्तमान में शरीर से पूज्य श्री जवाहरलालजी विद्यमान नही है किन्तु अपने यशः-शरीर से वे सदा-सर्वदा विद्यमान रहेंगे । उन महापुरुष का गुणकीर्तन मुनि ज्ञान द्वारा किया गया ।
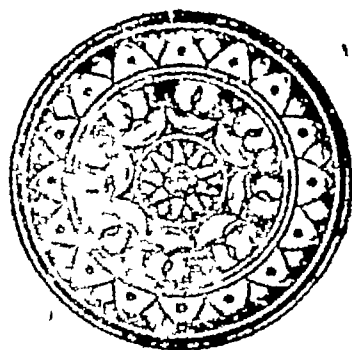
आचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज साहब

❀ अष्टकम् ❀

(१)

अज्ञानकर्दमे मग्नः, जीवः ससार-सागरे ।
वैषम्येण समायुक्तः, प्राप्तुमर्हति नो सुखम् ॥

भावार्थ : ससार रूपी समुद्र के अन्दर अज्ञान रूपी कीचड में मग्न तथा विषमता से युक्त जीव कभी भी सुख शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता ।

(२)

इत्थं मनसि सचिन्त्य, प्राप्तः वैराग्य-भावनाम् ।
जवाहरगुरोः पार्श्वे, दीक्षितोऽध्ययने रत. ॥

भावार्थ : इस प्रकार मन में विचार कर आप वैराग्य-अवस्था को प्राप्त हुए तथा श्री जवाहराचार्य के समीप दीक्षित होकर आगम-पठन मे रत हुए ।

(३)

साङ्गोपाङ्गसुशास्त्राणा सुमर्मोद्घाटन कृतम् ।
शास्त्रे विचक्षणो भूत्वा, जनकल्याणमाचरत् ॥

भावार्थ : आपने शास्त्रो के अग और उपांगो के रहस्य का समुद्घाटन किया और उनमे पूर्ण विचक्षण होकर मनुष्यो का कल्याण किया ।

(४)

ग्रामे ग्रामे भ्रमित्वा च, पापाज्जीवा हि रक्षिताः ।
रागद्वेषमपाकर्तुम्, वीरवाणी प्रसारिता ॥

भावार्थ · ग्राम ग्राम में परिभ्रमण कर पापो से जीवो की रक्षा की तथा राग-द्वेष को दूर करने के लिये भगवान् महावीर की वाणी का प्रचार किया ।

(५)

सर्व-श्रमणसंघस्य, युवाचार्यपद गतः ।
तत्राचारस्य शैथिल्यं, दृष्ट्वा निजपदं जहौ ॥

भावार्थ । स्थानकवासी समाज के उपाचार्य पद को प्राप्त किया, किन्तु वहाँ आचार की शिथिलता देख अपने पद को छोड दिया ।

(६)

शरीरे चैकदा तस्य, महाव्याधिसमुद्भवे ।
क्षमया सहन कृत्वा, व्यग्रता नैव दर्शिता ॥

भावार्थ : एकदा आपके शरीर में महान् व्याधि उत्पन्न होने पर उसे क्षमा पूर्वक सहन किया पर आपने किंचित् मात्र भी व्यग्रता प्रदर्शित नही की ।

(७)

धुरं समर्प्य नानेशे ज्ञात्वा स्वमरणान्तकम् ।
तत्याजौदारिक देहं विद्यमानो गुणैः सदा ॥

भावार्थ । संघ का भार सुयोग्य शिष्य नानेश को देकर के अपने मरणान्त को जानकर पंडित मरण पूर्वक औदारिक शरीर को त्याग किया । तथापि गुणो के द्वारा तो वे आज भी विद्यमान हैं ।

यत्र तत्र च सर्वत्र, प्रसृत गुणसौरभम् ।
गणेशाचार्यपूज्यस्य, धरायां शाश्वत ध्रुवम् ॥

भावार्थ । पूज्य गणेशाचार्य जी का गुण–सौरभ अवनितल पर यत्र तत्र सर्वत्र शाश्वत ध्रुव रूप से फैला हुआ है ।
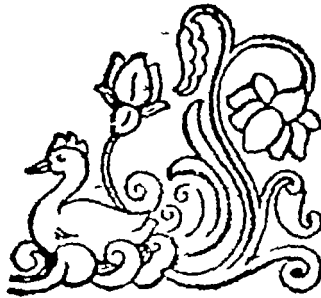
आचार्य श्री नानालालजी महाराज साहब

❀ अष्टकम् ❀

(१)

मेवाडे प्रथिते प्रान्ते, दांताग्रामे समुद्भवः ।
ममताबन्धन छित्त्वा, सयमजीवने रतः ॥

भावार्थ : प्रसिद्ध मेवाड प्रान्त के दांता ग्राम मे जन्म लेने वाले वर्तमान शासनेश (आचार्य श्री नानालालजी म. सा.) जागतिक बन्धन को तोडकर सयममय जीवन में निरत हो गए ।

(२)

आगमज्ञाननिष्णातः गणिपदे सुशोभितः ।
वीरवाणी प्रचारार्थं, ददाति देशनासुधाम् ॥

भावार्थ : आप अध्ययन करके आगम के मर्म में निष्णात हुए तब गणेश गणिवर ने आपको गणिपद पर सुशोभित किया । सतश्च विश्व भर के अन्दर आप देशनासुधा का जनसमुदाय को पान करा रहे है ।

(३)

वैषम्यस्य विनाशार्थं समतैवेकमौषधम् ।
तत्सिद्धान्तस्वरूप हि संक्षेपेण निगद्यते ॥

भावार्थ : व्यक्ति से लेकर अखिल विश्व तक प्रसृत विषमता का विनाश करने के लिये समता ही एक मात्र औषध है, जिसका आप

प्रसार कर रहे हैं। उन्ही सिद्धान्तो के स्वरूप को संक्षेप मे कहते हैं।

समतासिद्धान्त–दर्शन–

गृह्णाति हृदि भावेन, त्याग–वैराग्य–सयमम् ।
लभते समसिद्धान्तं, जीवनोन्नतिकारकम् ॥

भावार्थ : जो साधक आन्तरिक भावना के साथ जीवनोन्नतिकारक त्याग, वैराग्य, संयम को ग्रहण करता है, वह समता–सिद्धान्त को प्राप्त करता है।

जीवन–दर्शन

(५)

पल सुरापणाखेटा॰, चौर्यं वेश्यापराङ्गना। ।
सप्त व्यसनसत्याग, दर्शन जीवनस्य तत् ॥

भावार्थ : मांस, मदिरा, जुआ, शिकार, चोरी, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन इन सात कुव्यसनो का जो त्याग करता है वह जीवन–दर्शन को प्राप्त करता है।

आत्म–दर्शन

(६)

पचमहाव्रतानां च, शुद्धरूपेण जीवने ।
कुरुते पालन नित्य, समाप्नोत्यात्मदर्शनम् ॥

भावार्थ : जो जीवन मे शुद्ध रूप से पच महाव्रतो का पालन करता है वह आत्मदर्शन को प्राप्त करता है।

परमात्मा–दर्शन

(७)

कर्मणा विप्रणाशेन, सप्राप्याऽयोगिजीवनम् ।
विशुद्ध लभते प्राणी, परमेशपद परम् ॥

भावार्थ : प्राणी अष्ट कर्मों का सम्पूर्ण रूप से विनाश कर देने से अयोगी जीवन को प्राप्त करके विशुद्ध परमात्मा पद प्राप्त करता है ।

(८)

यावत्सत्वं दिनेशस्य, शैलेशस्य कथा तथा ।
नानेशस्य यशः शस्त, शाश्वत काश्यपीतले ॥

भावार्थ : जब तक विश्व में सूर्य विद्यमान है तथा सुमेरु पर्वतराज की सत्ता है, तब तक मुनिराज नानेश का निर्मल और प्रशस्त यश भूतल पर विद्यमान रहेगा ।

समता-विभूति-आचार्य श्री नानेशाष्टकम्

छन्द—द्रुतविलम्बित

सकल सौख्य—सुधारसपायकं ।
विमल—सयम—शील—सुसायकम् ।
सतत—सघ—सुबोधन—दायक ।
प्रसमता—विभव प्रणमाम्यहम् ॥

भावार्थ : सकल सुखकारी अमृत रस का पान कराने वाले, विमल सयम एवं क्षमा रूप प्रशस्त शास्त्र को धारण करने वाले, चतुर्विध संघ को अहर्निश सुबोध देने वाले, अष्टम पट्टधर समता (विस्तारक) विभूति आचार्य श्री नानेश को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूं ।

अमित—सागर—साम्य—समाहितम् ।
क्षिति—विहार—विशिष्ट—दिवाकरम् ।
परमघातकरोप—विघातकम् ।
प्रसमताविभवं प्रणमाम्यहम् ॥

भावार्थ : समता रूप बिना तट के अपार—अगाध समुद्र को समाहित

करने वाले, पृथ्वी पर विचरण करने वाले, आध्यात्मिक सूर्य तथा आत्मगुण-घातक क्रोध का विघात करने वाले, अष्टम पट्टधर समता (विस्तारक) विभूति आचार्य श्री नानेश को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूं ।

मननपूर्वक शास्त्र-विकासक,
असुमता करुणा-वरुणालयम् ।
सुखद सयम-सस्कृतिपालकम्,
प्रसमता-विभव प्रणमाम्यहम् ।।

भावार्थ : चिंतन-मननपूर्वक शास्त्र का विकास करने वाले, प्राणियो के प्रति करुणासागर, सुखद सयम सस्कृति पालन करने वाले अष्टम पट्टधर समता (विस्तारक) विभूति आचार्य श्री नानेश को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हू ।

जड-सुचेतन-भेदनकारकम्,
निविड-मोह-समूह-विनाशकम् ।
विधि विधान-विवेक विधायकम्,
प्रसमता-विभव प्रणमाम्यहम् ।।

भावार्थ : जड़ चेतन का भेद बताने वाले, सम्पूर्ण मोह रूपी मद का विनाश करने वाले, विवेकपूर्ण सयम के विधानो को बतलाने वाले अष्टम पट्टधर समता (विस्तारक) विभूति आचार्य श्री नानेश को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हू ।

शिथिल-सयम जीवन-वारकम्
कमल-शील-सुगध-सुवासितम् ।
शशि-समान-विभासित-वक्त्रकम्,
प्रसमता-विभव प्रणमाम्यहम् ।।

भावार्थ : शिथिल सयम का विनिवारण करने वाले, शील रूप कमल की सुगन्ध से सुवासित, चन्द्रमा के समान विभासित मुखमण्डल वाले अष्टम पट्टधर समता

(विस्तारक) विभूति आचार्य श्री नानेश को मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हू ।

आगम–मुक्ति सुखाब्धिसमीहया,
भव–विभाव–सुतापित–जीवने ।
मद–ममत्व–विलास–विवर्जकम्,
प्रसमता–विभव प्रणमाम्यहम् ।।

भावार्थ । अगम्य मुक्ति के सुख की इच्छा से प्राणियो के भव रूपी विभाव से तृप्त जीवन मे मद ममत्व को दूर करने वाले अष्टम पट्टधर समता (विस्तारक) विभूति आचार्य श्री नानेश को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हू ।

सकलकर्म–विलास–विनाशने,
शुभद-शास्त्र-विलोडनतत्परम् ।
परमधर्मरतं दमितेन्द्रियम्,
प्रसमता विभव प्रणमाम्यहम् ।।

भावार्थ । समस्त कर्मों के नाटक का अन्त करने हेतु सुखकारी शास्त्र के स्वाध्याय में निरत, परम धर्म मे रत, इन्द्रियो का दमन करने वाले अष्टम पट्टधर समता (विस्तारक) विभूति आचार्य श्री नानेश को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूं ।

अचल–मेरु–समो यम-संयमे,
गहन–सागर–तुल्य–धृतिर्यक।
प्रखर-बुद्धियुतस्तमहर्निशम्,
प्रसमता–विभव प्रणमाम्यहम् ।।

भावार्थ : अचल मेरु पर्वत के समान महाव्रतो में और सयम में दृढ़, गहन सागर के समान धैर्य को धारण करने वाले, प्रखर प्रतिभा से सम्पन्न, अष्टम पट्टधर समता (विस्तारक) विभूति आचार्य श्री नानेश को मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूं ।

प्रशस्तिः छंद अनुष्टुप—

श्री नानेशाष्टक स्तोत्रं,
शिष्यज्ञानेन निर्मितम् ।
धारयन्ति गुणान् हृद्यान्,
प्राप्नुवन्ति सुखालयम् ।।

भावार्थ : मुनि 'ज्ञान' द्वारा रचित आचार्य श्री नानेशाष्टक स्तोत्र का गान कर जो भव्य प्राणी उनके गुणो को यथाशक्य धारण करते हैं, वे अपूर्व सुख को प्राप्त करते हैं ।
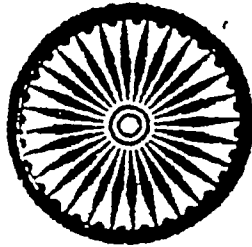
अष्टाचार्य-गुणाष्टकम्

छन्द : शार्दूलविक्रीडितम्

(१) आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज साहब

शास्त्राणां विधिपूर्वकं मुनिजना कुर्वन्ति नो स्वक्रियाम्,
ज्ञात्वा, जीवन-सर्जने परिषह संसह्य, शास्त्रे रतः ।
तत्वानां मथनेन सर्व-सुखद बोध नरेभ्यो ददौ,
ज्ञानेनाचरणेन-योग-निरतो वन्दे हि हुक्मिं गुरुम् ॥

हिन्दी काव्य :

शास्त्रो की विधि-भाव से मुनिजनो को पालना थी नहीं,
आत्मा के सुविकास मे परिषहो को साम्यता से सहा ।
शास्त्राभ्यास विमर्श के मधुसुधा सुज्ञान पूरा दिया,
हुक्मी भानु सुबोध आचरण मे दीपे धरा मैं सदा ॥

भावार्थ : मुनिजन शास्त्रो की विधि के अनुसार अपनी क्रियायें नहीं करते थे । ऐसा जानकर जीवन निर्माण में परिषहो को सहन कर, शास्त्र-पठन में रत हुए और तत्वो अभ्यास से प्राणियो को सुखद उपदेश फरमाया । इस प्रकार ज्ञान और आचरण से योग मे निरत हुक्मी गुरुवर को नमस्कार करता हूं ।

(२) आचार्य श्री शिवलालजी महाराज साहब

वैदग्ध्येण चराचरं सविपद दृष्ट्वा मनो नो रतम्,
पापाद् दूरगत. सरागनिलयं हित्वा व्यधान् मुण्डनम् ।
आचार्यत्व गुणान्वितः सुतपसा संसारमोहं जहा-
दंभोज मकरान्वये च विमलो वन्दे शिव कोविदम् ॥

हिन्दी काव्य :

ससार स्थिति का विचार करके आसक्ति से दूर हो,
पापों से सुविरक्त हो विषमता को त्याग के चित्त से।
हो आचार्य सुधी सुवीर तप से निष्पाप हो भाव से,
ज्यो इंदीवर सिंधु मे शिवगणी दीपे सुधी लोक मे ।।

भावार्थ : चराचर लोक को विषमता से दु खी देखकर संसार मे जिनका मन लीन नही हुआ । जिन्होने पाप से दूर हो, तप के द्वारा राग समूह का नाश कर मुण्डन किया, तथा आचार्य के गुणो से युक्त 'सु' सम्यक् ज्ञान सहित (३२ वर्ष पर्यन्त एकान्तर की) तपश्चर्या के द्वारा ससार-मोह का नाश किया । इस प्रकार समुद्र में कमल के समान निर्लिप्त विचक्षण शिवाचार्य को नमस्कार करता हू ।

(३) आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज साहब

दुःखानां शमनादमुं गणिवर वैराग्यभावैर्युतम्,
भव्यानां हृदयाङ्गणात् शशिसम मिथ्यात्वविध्वसकम् ।
शान्तं दान्त-विशुद्ध–भाव–भरित रत्नत्रयाराधक,
आचार्योदय–सागरं गुणनिधिं वन्दामहे सादरम् ।।

हिन्दी काव्य :

दु खो का कर नाश सयमव्रती वैराग्य सपृक्त थे
भव्यो के मिथ्यात्व के तिमिर को सद्देशना से हरा।
जो संशुद्ध-विशुद्ध भाव युत थे, रत्नात्रयाराधक,
आचार्योदयसागराख्य गुरू को है वन्दना प्रेम से ।।

भावार्थ : ये गणिवर दुखो का शमन करने वाले वैराग्य भाव से युक्त हुए, जो रत्नत्रय के आराधक शान्त दान्त और विशुद्ध भाव से युक्त थे, जिन्होने चन्द्रमा के समान होकर भव्यो के हृदयाङ्गन से मिथ्यात्व के अन्धकार का नाश किया । ऐसे गुणो के निधि और मनुष्यो मे पूजित आचार्य श्री उदयसागर जी महाराज को वन्दन करते हैं ।

(४) आचार्य श्री चौथमलजी महाराज साहब

तत्त्वानां परिशीलने प्रतिपल यत्नेन नित्य रतं,
जीवाना परिरक्षणे भगवतो वाण्याः प्रचारं दवो ।
गांभीर्येण महार्णवं वहुजनैः पूज्यं च सयामक,
तीर्थानां सुविकासकं जन-जनेष्वाचार्य-चौथ नुमः ॥
हिन्दी काव्य ।

तत्वों के सुविचार से सुयत हो, सोचा सदा वुद्धि से,
तीर्थेश ध्वनि को किया प्रकट यो रक्षा हुई सत्व की ।
गंभीराब्धि समान सर्व जन के सयामक श्रेष्ठ थे,
जो थे तीर्थ विकास-कारक महान् श्री चौथ को वन्दना ॥
भावार्थ । जो दमनशील, तत्त्वो के परिशीलन मे यत्न से नित्य रत हुए, जिन्होने जीवो के परिपालन के लिए भगवान् की वाणी का प्रचार किया, जो गभीरता मे महार्णव के तुल्य थे, बहुजनो से पूज्य, सयमी एवं साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघ के सुविकासक थे, उन आचार्य चौथमलजी महाराज साहब को नमस्कार करते हैं ।

(५) आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब

मोहासक्त-नराः हि भौतिक-सुखेदुं ख लभन्ते ध्रुवम्,
तद् दृष्ट्वा परिवार-जन्य-वनिता सम्बन्धक त्रोटितम् ।
सत्कर्मावरण सुतीव्रतपसा जीवात् क्षिपन्त सदा,
सत्याचौर्यमहाव्रतैश्च लसितं श्रीलालसूरि नुम ॥
हिन्दी काव्य :
रागों में रत जीव निश्चय सदा पाता महा दुःख को,
ऐसा जान शुभाङ्गना गृहजनों से स्नेह को तोड़ के ।
कर्मों के पट को सुतीव्र तप से फेंका सभी जीव से,
सत्याचौर्य-यमादि से चमकते श्रीलालजी को नमें ॥
भावार्थ : मोह से आसक्त मनुष्य निश्चय ही भौतिक सुखो मे दुःख को ही प्राप्त करता है । यह देखकर जानकर परिवार एवं पत्नी सम्बन्धी स्नेह के बन्धन को जिन्होंने तोड़ दिया तथा कर्म के आवरण को तीव्र तपश्चर्या द्वारा दूर करते हुए अहिंसा, सत्य

अचौर्य, अपरिग्रह रूप महाव्रतो से सुशोभित हुए, उन आचार्य श्री श्रीलालजी म सा को नमस्कार करते है ।

(७) आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज साहब

देशेऽस्मिन् धन-धान्य वैभवयुते श्री थांदला ग्रामके,
माणिक्येषु च हीरक द्युतियुत ज्योतिर्धर साधुषु ।
शास्त्रस्याध्ययन मनोवचनकर्ययेगेन सपादितम्,
त सर्वाचार्य-जवाहर यतिवर भावेन भक्त्या नुम. ।।

हिन्दी काव्य :

ग्रामो मे शुभ थांदला निगम में प्राणी सभी थे सुखी,
हीरो मे द्युतियुक्त हीर चमके ज्योतिर्धर श्रेष्ठ ही ।
शास्त्रो का सुविचार देह मन से सम्पन्न था योग से,
भावो से भर के जवाहर गणी, को प्रेम से वन्दना,

भावार्थ । इस देश भारतवर्ष मे प्रसिद्ध, धन–धान्य से परिपूर्ण थांदला ग्राम मे जन्मे, साधुओ मे ज्योतिर्धर, माणिक्यो मे जो चमकते हुए हीरे के समान थे, जिन्होने शास्त्रो के अध्ययन को मन वचन काय रूप योग से सपादित किया था, ऐसे सभी के अर्चनीय यतिवर जवाहरगणी को भक्ति–भाव से नमस्कार करते है ।

(८) आचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज साहब

गार्हस्थ्ये च महातमो विलसित शीर्षे सदा भ्राम्यति,
ज्ञात्वा वीर–जवाहरेण विरत सपादित जीवनम् ।
स्वाध्याये निरत प्रशस्तमनसा मग्न समाधौ ध्रुवम्,
भाषा यस्य सुकोमला सुललिता वन्दे गणेश गुरुम् ।।

हिन्दी काव्य ।

जीवो के मन मे सदा विकच है अज्ञान का चक्र ही,
रोगो से मन को जवाहरगणी मे बोध पा छोड के,
शास्त्रो मे रत हो पशस्त मन से पाये समाधि ध्रुव,
भाषा थी जिनकी सुकोमल सुधा वन्दे गणेश प्रभु,

भावार्थ : गृहस्थ जीवन मे फैला हुआ अज्ञान रूप घनांधकार मस्तिष्क मे सदा घूमता है, ऐसा जानकर जिन्होंने कषाय रूपी शत्रुओ का मर्दन करने मे वीर जवाहराचार्य से बोध पाकर जीवन को विरक्त बनाया, ऐसे प्रशस्त मन से स्वाध्याय मे निरत,

निश्चित समाधि मे लीन, सुन्दर ललित भाषा के प्रयोक्ता
श्री गणेश गणिवर को प्रसन्नता से नमस्कार करता हू ।

(९) आचार्य श्री नानालालजी महाराज साहब

ससारे सरता कुधर्ममननेनोन्मत्तमातङ्गवत्,
जीवानां हृदि भावित–मदमपा चक्रे सुरूपेण च ।
धर्मस्यापि समस्तजीवनिवहे येन प्रचार' कृतः,
पापानां विनिवारक तमुदित नानेशदेव नुमः ।।

हिन्दी काव्य :

उन्मत्त द्विप के समान नर ही ससार मे हैं बहू,
विक्षेपोन्मुख भूरि पाशविकता से दूर पूरा किया ।
धर्मों का करके प्रचार जग मे सतोष भू को दिया,
पापो का कर नाश निस्पृह गणी नानेश को वन्दना ।।

भावार्थ कुधर्म के मनन के कारण उन्मत्त हाथी के समान विचरते हुए जीवो के हृदय भावित मद को सम्यक्तया दूर किया तथा समस्त प्राणी वर्ग मे धर्म का पूर्ण प्रचार किया । इस प्रकार पापो का निवारण करने वाले उदय को प्राप्त नानेश देव को वन्दन करते हैं ।

प्रशस्ति–छन्द–स्रग्धरा—

इत्थ भक्त्या गुणानां हृदयकमलके शान्तभाव सुखेन,
सरक्ष्यार्यप्रभाव सकलगुणगणाद्यर्चनं यः करोति,
ज्ञान श्रद्धा चरित्र त्रिपु मणिनिलय प्राप्य मुक्ते सुमार्ग,
निर्बाध तेन लब्ध भवति सुखमय साधुज्ञानेन्द्रभावः ।।

हिन्दी काव्य :

ऐसी पूजा गुणो से हृदय कमल मे भाव की स्थापना से,
आचार्यों की प्रभा को, सकल सुयश को जो नमे भावना से,
ज्ञान श्रद्धा क्रिया ही शुभ मणित्रय को जान निर्बाध मुक्ति ।
वे ही पाते खुशी से, निरुपम सुख को 'ज्ञान' के भाव ये ही ।।

भावार्थ : इस प्रकार जो आचार्यो के गुणो के शांत भाव एव प्रभाव को सुख से हृदय–कमल मे स्थापित करके सम्पूर्ण गुणगणो की अर्चना (भक्ति) करता है, वही ज्ञान–दर्शन–चारित्र रूप त्रिरत्न को प्राप्त करके निर्बाध मुक्ति–पथ को प्राप्त करता है । यही 'साधु ज्ञानेन्द्र' का भाव है ।